रतन बोध
शुभंवदा पाण्डेय

रतन-बोध

द्वारा-शुभंवदा पाण्डेय

समर्पण

रत्ना भारतीय संस्कृति के महत् शक्ति का वैभवमय द्वार है, जो विराट के स्वीकारात्मक पक्ष के आध्यात्मिक मंजिल तक पहुँचने की मंजिल को राह दिखाती है। रत्ना का उपदेश तुलसी के जीवन का मूल है, जिसे इस देश की माटी कभी नहीं छोड़ सकती। भारतवर्ष ईश्वर का देश है, अतः तुलसी रत्ना के ईशित्व शक्तियुक्त शुचि स्नेह एवं त्याग को यह 'रतन बोध' समर्पित है।

–शुभंवदा पाण्डेय

रतन-बोध क्यों?

'रतन-बोध' तुलसी के पीछे खड़ी स्त्री की मनोभूमिका का संवेदनाओं से सिंचित परस्पर की समझदारी का सांस्कृतिक विरासत है। यह मानस के रूप में मानवीय सम्बन्धों का स्वच्छ और अटूट गँठजोड़ है। मौन प्रेम लहरी का शान्त स्निग्ध समुद्र में परिणति। यह प्रेम का निर्मल झरोखा है, जहाँ कोई चाहत नहीं। आज हम अपने मूल निधि के केन्द्रिय भाव से विमुख होकर रिश्तों से पलायन कर संकुचित व्यक्तिवादी छोछली नदी के लहरों में खो रहे हैं-जो कब सूख जाय कुछ पता नहीं।

रामचरितमानस के पीछे खड़ी एक त्यागमयी नारी रत्ना है। उसका बोध, उसके देंश-प्रेम, त्याग, बलिदान का मौलिक गाथा है, जहाँ पति-पत्नी का गहरा प्रेम शरीर से दूर रहने पर भी आत्मा को आभास देता है। मानस ने जनमानस को टूटने से बचाया है। भारत को स्वच्छ स्वतन्त्र विचार धारणा दी, जिससे हम अभाव में जीवित रहते हुए भी रिश्तों के गँठजोड़ को विश्वास और सत्य-निष्ठा के आचरण का निर्वहन करते हुए प्रेम करते रहे। रत्ना और तुलसी का जीवन इसका प्रयत्नसाध्य प्रमाण है।

आज विश्व अशान्ति और युद्ध, क्रान्ति और हलचल, भोग-विलास के प्रदूषित पालने में आँख बन्द कर झूल रहा है-इसका परिगाम, दूरियाँ, विस्फोट रिश्तों का सड़न और क्रूर कर्म अपने 'स्व' का विश्वास स्वयं खो रहा है।

'रतन-बोध' का साक्षी मानस का प्रयोग धर्म है। इसे पढ़ समझकर हम अपने को, अपने परिवेश और परिवार को अच्छे आचरण को करने की सम्भावनाओं पर प्रकाश डालते हुए उसका प्रयोग करें। बस एकै साधे सब सधै। प्रेम की एकता से नाला भी स्वच्छ होकर गंगा जल जैसा निर्मल बन सकता है। आप सबके स्वस्थ मानसिकता के लिए ही यह 'रतन-बोध' समर्पित है-

शुभंवदा पाण्डेय
ग्राम-आशापुर, सारनाथ

स्वगत

'रतन-बोध' का रिश्ता मेरी ताकत है। यह भारतीय नारी का जागरूक आत्म संतुलन है जो दाम्पत्य जीवन की एक मजबूत कड़ी है। काम एक रागात्मक वृत्ति है- जिससे संसार का श्रृंगार होता है। दो देह एक, दो मन एक, दो आत्मा एक। इसके भीतर कोई दीवार नहीं केवल दीदार होता है दूर हो या पास, पृथ्वी पर हो या उस पार। सुख इसका पहला कदम है, वेदना इसका दूसरा;दूसरा जो पहले कदम से भी मजबूत और सत्यात्मक होता है। मेरे पति स्व० प्रेमशंकर पाण्डेय यथा नाम तथा गुण थे। प्रेम के समुद्र शंकर जैसी कल्याण की भावना। उनके न रहने पर भी रतन-बोध के कारण मैं आश्रयविहीन नहीं बल्कि प्रेमजल के भीतर डूबी हूँ। जितनी सजल मैं हूँ उससे भी अधिक सजल और मानवता के प्रति चैतन्य वो थे। इसका प्रमाण उनकी ये पंक्तियाँ हैं-

यह धरती रामकृष्ण की
सदा याद है रखना।
हमें आज की इस धरती पर
मानव को है परखना।। १।।

मानव-मानव का बैरी क्यो?
वह तो उसका भाई है।
इसीलिए मानवता की
हम देते सदा दुहाई है।। २।।

यह 'रतन-बोध' भारतीय संस्कृति का गँठजोड़ अटूट कहानी है जो हमेशा से घटती आ रही है। इसके साथ चलने पर कुछ नया चमत्कार होता है-

तुलसी बिरवा प्रेम का
चखै सों प्रेमी होय।
रत्ना उपदेश वह जब चखा
कविगण पीछे होय।।

-शुभंवदा पाण्डेय

रतन-बोध

रतन-बोध मानस का द्वार है, जहाँ तर्क का हथियार नहीं प्रेम का वैभव प्रवेश पाता है। यह एक आध्यात्मिक आत्मिक संस्कार है, जो भौतिक द्वार पर टूटता हुआ दिखायी देकर भी, पिलाता है, भक्ति का द्रवित पुकार भरा विशुद्ध पय, जिसे पीने तुलसी और पिलाने स्वयंभू श्रीराम स्वतः आता है, जिसकी देहरी रतन जलती हुयी, भी खुश है।

तुलसी इस पृथ्वी का नवजागरण है, जिसका अतीत, वर्तमान और भविष्य उसे नव्य नूतन बने रहने की ऊँचाई देता है। उसके गहरे जख्मों से आध्यात्मिक झरनों का रस चूता है। भौतिक जगत का ठोकर तो उसने जन्म से ही स्वीकार कर लिया। इसीलिए यह उसका ठोकर भरा जीवन ही उसे प्रेरित करता रहा। जन्म लेते ही पिता-माता द्वारा परित्यक्त, ३ वर्ष होते-होते मुनियाँ दाई की मृत्यु। फिर नरहर्यानन्द की कृपा से राम-कथा का बीजमंत्र मिलना और काशी में शेषसनातन के संरक्षण में समस्त वेद-वेदांङ्ग इतिहास, पुराण, व्याकरण आदि की शिक्षा। शिक्षा पूरी करने पर गुरु आज्ञा से अपने घर राजापुर लौटना, जहाँ अब उसका कोई अपना न था। दीनबन्धु पाठक का तुलसी की ओजस्विता से प्रभावित हो अपनी विदुषी कन्या रत्नावली का परिणय करना। तुलसी प्रथम दृष्ट्या रतन को अपना दिल दे बैठा और अपने जीवन के मूल को उसे सौंप दिया। दोनों मिलजुलकर प्रीति की गहरायी में आत्मवत् एक दूसरे को स्वीकार कर चुके। कुशल पत्नी की गुणवत्ता से प्रभावित तुलसी उसके मायके जानेपर ससुराल पहुँचा, जहाँ आधी रात के सन्नाटे में रतन के खिड़की के पास प्रेम पुजारी बन दस्तक देता रहा, रतन की निद्रा टूटी। रत्ना अवसर की उपयुक्तता पर विचार कर अपने प्रिय पति के चेतना को जागृत करने के लिए बोल पडी-

लाज न लागत आपको, दौरे आयहु साथ।
धिक्-धिक् ऐसे प्रेम को, कहा कहौ मैं नाथ।।
अस्थि चर्ममय देह, मम तामे जैसी प्रीति।
वैसी जो श्रीराम मँह, होति न तव भवभीति।।

इतिहास के गवाक्ष से

वास्तव में उस समय का इतिहास साक्ष्य है कि जनता के सामने ही उसके देवमन्दिर गिराये गये, मूर्तियाँ तोड़ी गयी। इस दृश्य को बाल्यावस्था से ही रत्ना और तुलसी दोनों ने देखा। इस क्रूर-कर्म को उनका भोला मन नहीं सह सका और अन्तर्मन में गुबार बना रहा। रतन आज होश सँभाल चुकी थी, इसलिए अपने भटकते हुए पति को अपनी गुरु वाणी से सचेत की। रत्ना का प्रतीक्षित समय आ गया इसलिए आजीवन के लिए प्रेम बलिदान को स्वीकार कर भारतीय संस्कृति की सुरक्षा और नवजागरण के लिए तुलसी द्वारा अधर्म पर धर्म का विराट साम्राज्य स्थापित करवायी जहाँ से पुनः, कोई वापस नहीं आता। धरती उस विराट पुरुष की मेखला है, और नभ उसका एक कोना। रत्ना तुलसी की दिव्यता का बोध कर चुकी थी। वह जानती थी कि इनके दिव्यता की आवश्यकता जनमानस को है, जिसे व्यक्तिगत प्रेमकी तिजोरी में नहीं रखा जा सकता। रत्ना तुलसी के सहज मार्मिक प्रेमानुभूति का रस चख चुकी थी, अतः अपने प्रिंय को मानस-सागर में गोता लगाने को मजबूर कर दी।

जिस तरह गंगा नदी में गोता लगाने के बाद नदीं में या कूँए में नहाने की इच्छा नहीं रहती, उसी तरह मर्यादापुरुषोत्तम स्वामी श्रीराम एवं जगज्जननी जानकी की प्रियता का स्पर्श पाकर तुलसी सदा के लिए अपना दर्द, अपना घर सब कुछ भूल गया। रत्ना उसके कलम की बोल थी, चमक थी, जिससे रामप्रकाश द्युतिमान हुआ। अब रत्ना का ज़ख्म उसके अन्तर्मन को घायल कर राम-प्रेम का दीवाना बन चुका था, जिसकी दीवानगी में कर्मयोग का पवित्र आचरण ज्ञान की धुरी पर केन्द्रित हो, भक्तियोग के भावमय स्थिति में समा गया-जिसकी आवश्यकता आवाम को थी। यदि मानसकार मानस की रचना न करता तो भारतीय संस्कृति का स्तम्भ ही हिल जाता। संस्कृत का प्रकाण्ड विद्वान भाषा की सहजता में इसको लिपिबद्ध कर आचार

संहिता का बद्ध द्वार खोल दिया जिसमें रत्ना का दर्द छाया की भाँति छिपा है।

रत्ना से रामबोला का सहज हृदय प्रीति के अबोल बाणों से ऐसा बिंधा कि उसके बाद धरती की कोई भी शक्ति उस घाव को न भर पाता और न घाव को और अधिक बढ़ा पाता। रामबोला अपने बिंधे हृदय को रतन के दरवाजे पर छोड़, उस विराट शक्ति की ओर उन्मुख हुआ जो कभी भी किसी भी स्थिति में अपने आर्त भक्त को नहीं छोड़ सकता। अब रामबोला अपने निजी प्रीति-व्यापार को छोड़ सदा के लिए राम का तुलसी बन गया, जिसके शुचि सुगन्ध से संसार सज उठा।

अब बची रत्ना वह किसे पुकारे? कहाँ जाय? क्योंकि उसने अपने घर में अपने हाँथों आग लगाया, जिसमें उसकी निजी प्रियता खो गयी और उदय हुआ ज्ञान, कर्म एवं भक्ति का संयुक्त प्रकाश। सब कुछ हुआ किन्तु रत्ना उस क्षण को, अपने प्रेम-बलिदान को, रूठकर जाते हुए तुलसी को कभी न भूल पायी और उसकी साड़ी प्रीति रस के निश्छल मंदाकिनी में सदा भींगती रही। कभीं न भूल पायी वह रात और वह बाट, आँखें निर्झर बन झरती रहीं, साड़ी भींगती रही। समय बीतता गया और एक दिन उसे इस दोहे को सुनकर तृप्ति बोध हुआ–

राम नाम मणि दीप धरु जीह देहरी द्वार
तुलसी भीतर बाहिर्यो जौ चाहसि उजियार।।

रतन का पर्याय मणि है, जिसके आलोक में राम का सत्यप्रकाश दीप्तिमान है, जो अतीत के झरोखे की गहनतम कारा को प्रकाशित करता, अद्यतन प्रकाश का माध्यम बन समाज में आध्यात्मिकता के साथ-साथ सामाजिक और पारिवारिक न्याय की मर्यादा को आलोकित कर रहा है। यह रत्ना का अन्तर्बोध जिसके प्रकाश की छाया में, मैं अपना दर्द भरा स्नेह, दीपक में डालकर अक्षय रखने की कोशिश कर रही हूँ।

शुभंवदा पाण्डेय

प्रो० मधुसूदन मिश्र
अति०कुलानुशासक,

महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ
वाराणसी-2

शुभाशंसा

श्रीमती शुभंवदा पाण्डेय द्वारा लिखी गयी 'रतन-बोध' रचना, भाव, भाषा से युक्त रत्ना और तुलसी के व्यक्तित्व और कृतित्व की पूर्णता का द्योतन करती है। रत्ना के कारण तुलसी आज जन-जन के हृदय तक पहुँचा है और पहुँच कर लोगों के विश्वास और निष्ठा को प्राप्त किया। रत्ना छाया-प्रकाश की भाँति एक ऐसी विलक्षण प्रतिभायुक्त जीवन संगिनी है जो प्रेम के गहराई में प्रवेश कर प्रेमतत्व को साकार की। वह देह से उपर उठकर तुलसी के आत्मतत्व में प्रवेश की और राम मिलन की प्रेरणा दी। ऐसी त्यागमयी विलक्षण नारी के कर्त्तव्य-पथ पर चलने का अनुकरण करना और घर समाज तथा टूटते हुए रिश्तों का गठजोड़ करना आज के सम्पूर्ण नारी जाति का लक्ष्य हो तभी संस्कृति पुष्ट होकर स्वस्थ विचारधारा को जन्म देगी। 'रतन-बोध' अन्तर्जगत को यात्रा का विशुद्ध पंथ है, जिससे देश के गौरव को बचाया जा सकता है। अमिधा-व्यंजना और लक्षणा से युक्त यह काव्य छात्र-छात्राओं और बुद्धिजीवियों तक पहुँचकर उन्हें प्रेरणा दे जिससे हमारी सांस्कृतिक पहचान योग के बीच भोग की पूर्णता भरी संजीवनी वर्तमान और भविष्य की पहचान बने।

भवदीय

(प्रो० मधुसूदन मिश्र)
अति० कुलानुशासक

श्रीमती शुभंवदा पाण्डेय जी की रचना रतन–बोध संक्षेप में अध्ययन करने पर अपनी अल्पबुद्धि से अधिक तो नहीं समझ पाया, लेकिन मेरे अन्तःकरण में एक प्रेरणा हुई कि श्रीमती शुभंवदा की रचनाएं आज के मानव जीवन के लिए प्रेरणादायी होगीं। मैं भगवान से प्रार्थना करता हूँ आपकी रचनाएं वर्तमान जनमानस में एक छाप छोड़े, और आपका नाम समाज के प्रत्येक वर्ग में गूंजता रहे। 'रतन–बोध' मानसकार की प्रेरणाशक्ति है, जो भारतीय–संस्कृति के मौलिक पक्ष नारी के अस्तित्व और पहचान को उजागर करता है।

रघुबीर दास

आपका शुभचिंतक

वाराणसी। एच० जी० रघुबीर दास (राजसूर्या प्रभुजी)

दिनांक : २०–०९–२०१० इस्कॉन, जूहू, मुम्बई

पिनकोड–४०००४९

(महाराष्ट्र)

अनुक्रम

१. ईश-वन्दना

जगदम्बा अम्बा सिय - प्रियतम,
जग करता जिसको नमस्कार।
जो तुलसी रत्ना मात - पिता,
शत - शत करती उसको प्रणाम।। १।।

जब गहन कुहाँसा तमस पंथ,
उस समय ज्योति बन आया था।
अवतारी उस रघुनाथ लला को,
मैं झुक झुक करती नित प्रणाम।। २।।

रामबोला बत्तीस दाँत लिए,
बस राम - राम ही बोल रहा।
पुरजन परिजन सब भाग खड़े,
उसके रक्षक को शुभ प्रणाम।। ३।।

सांस्कृतिक पूर्णता की रचना,
'मानस' भारतीय विरासत है।
सिय - राम चरित रसधारा को,
अम्बर धरती का युग प्रणाम।। ४।।

रत्ना सागर की हीरक - मणि,
जो देश - जाति ऐश्वर्य प्रभा।
उस परम पुनीत सुशीला की,
वाणी - शक्ति को, चिर प्रणाम।। ५।।

तुलसी तो तुलसीदल जैसा,
इस निगमागम को चूसा था।
मानस - सागर में रस भर - भर,
'रस' को करता रहता प्रणाम।। ६।।

शिव - शक्ति रमण करते जिसमें,
उस रामचरित को शत प्रणाम।
जीवन्त शक्ति यह भारत का,
जड़ - चेतन मिल करते प्रणाम।। ७।।

रत्ना का राष्ट्रीय चिन्तन

खूनों से लथपथ युग था,
निरुपाय सभी का जीवन।
यवनों का आतंकित स्वर,
जीवन को मृत कर देता।। १।।

आये थे लूट मचाने,
हिंसा - हत्या की साजिश।
साम्राज्यवाद प्रतिहिंसा,
शासन की शाश्वत कालिख।। २।।

प्रतिमाएँ खंडित होती,
पत्थर बन पत्थर सहती।
पर बाल - मन नहीं सहता,
इस हिंसा की बरजोरी।। ३।।

उत्तर से दक्खिन तट तक,
पूरब से पश्चिम तक तब।
बस हाहाकार मचा था
कोई पूज न सकता मूर्ति।। ४।।

जनता थी गूँगी बहरी,
आँखों को भी थी मूंदी।
पर दीनबन्धु की बेटी,
सुनती थी तोड़ा - तोड़ी।। ५।।

जब-जब मंदिर के कंकड़,
उसके पैरों में धँसते।
कभी चैन न मिलता उसको,
बस बिकल हृदय को करते।। ६।।

कभी रोती थी राधा से,
कभी कृष्ण की प्रतिमा ले ली।
कभी राम - सिया संग बैठी,
मूरत संग मूरत बनती।। ७।।

शंकर तो शंकर था ही,
चाहे मारे, या कोई तोड़े।
अलमस्त भंग का गोला,
पीकर भक्तों संग रोए।। ८।।

रत्ना यह सब कुछ देखे,
पर नहीं भरोसा टूटे।
प्रतिमा का नित्य बिखंडन,
उसके मन को बस बेधे।। ९।।

संस्कृति का दीप बुझा था,
बेदाग न मन्दिर पूजा।
यह बड़ी चुनौती, रत्ना,
स्वीकार कर रही युग का।। १०।।

यद्यपि छोटी, वय कोमल,
इसकी ही अभीं हुई थी।
परिपूरन थी मन से वह,
चिन्तन की दिव्य शिखा सी।। ११।।

अन्तर में ज्वाल छिपाए,
देखी थी, देश समस्या।
अतएव ढूढ़ती हल को,
जो तृप्त कर सके युग को।। १२।।

रत्ना के उज्ज्वल मन में,
यह भाव छिपा बैठा था।
मूर्तियाँ तोड़ते क्यों ये?
वह खोज रही थी, हल क्या?।। १३।।

बिन खाए ही सो जाती,
नित, माटी - मूर्ति बनाती।
रो-रोकर मन की बातें,
मूरत से कहती रहती।। १४।।

उसके करुणा की धड़कन,
माँ सुनती, और समझाती।
पर पीड़ासे पीड़ित मन,
पीड़ा में ही सुख पाती।। १५।।

धीरे - धीरे रत्ना अब
बचपन को छोड़ चुकी थी।
सुन्दर किशोर युवती वह
विकसित कलि सी लगती थी।। १६।।

मंगल, सुहाग के खातिर,
घर में कुछ बात चला था।
यह सब जब सुनती रत्ना,
तब दर्द और होता था।। १७।।

रूढ़ियाँ न उसको भाती,
भीतर मशाल जलता था।
रस्मो - रिवाज के खातिर,
यह देश बँधा हुआ था।। १८।।

वह राम रसिक रस पीकर,
तल्लीन रहा करती थी।
सीता का जीवन जीकर,
सीता प्रतिमा ले रोती।। १९।।

हिंसा से घुलती आहें,
बस चोट कर रहीं उस पर।
धर्मान्ध क्रूर शासक का,
विषपान कर रही रत्ना।। २०।।

इस तरह राष्ट्र शोकाकुल,
बस कर्मकाण्ड विकसित था।
सामना न करता कोई,
यह देख दुखी थी रत्ना।। २१।।

चिन्तन का दीप जलाए,
हल ढूढ़ रही थी रत्ना।
तबतक मन्दिर टूटा था,
यह देख रही थी रत्ना। २२।।

आपस के प्रतिशोधों से,
जनता अब ऊब चुकी थी।
कट्टरता की ध्वनि सुन - सुन,
रत्ना बेचैन हुई थी।। २३।।

कभीं दुर्गा - पूजा होती,
तो बिछ जाती थी लाशें।
यह हवस भरी आँधियारीं,
बस जगत ज्योति को छीने।। २४।।

शिव पर विश्वास जमाकर,
कोई राम को छोटा कहता।
जो राम की पूजा करता,
वह शिव को छोटा कहता।। २५।।

मुस्लिम ही नहीं विद्रोही,
हिन्दू भी थे अति छोटे।
सम्प्रदाय भाव जागृत हो,
सांस्कृतिक सूत्रता तोड़े।। २६।।

नहिं धर्म किसी का सात्त्विक,
देखा - देखी पूजा था।
विद्रोह भावना से ही,
युग में विध्वंश हुआ था।। २७।।

अच्छा नहीं लगता उसको,
पर सीमा थी नारी की।
इसलिए आँख भींगी ले,
सो जाती वह चुप - चुप ही।। २८।।

एक दिन सोची थी रत्ना,
विद्वान वर मिले मुझको।
भगवान तेरा विश्वासी,
मिल जाय कृपा से मुझको।। २९।।

✪

रामबोला का बचपन

जीवन का जीना मरना,
मधु पूर्व पात का झरना।
खुलते ही आँख से देखा,
जिसे छू न सकी जग माया।। १।।

जग को मिथ्या सब कहते,
पर कोई न मिथ्या माने।
आश्चर्य देखकर डरते,
बस हानि - लाभ पहचाने।। २।।

तुलसी अचरज बन आया,
यह जादूगर की माया।
माँ उदर लगा था अच्छा,
अतएव वहीं पल पाया।। ३।।

नवमाह में बच्चा होता,
पर तुलसी जन्म अनोखा।।
माँ उदर शुद्ध मृदुता पा,
रह गया मास बारह था।। ४।।

हुलसी की प्रियता लेकर,
ब्रह्मांड के बाहर आया।
चमचम दाँतों वाला वह,
माँ धड़कन और बढ़ाया।। ५।।

आते ही सच - सच बोला,
प्रिय राम रसिक रस घोला।
माँ सुनी, 'राम' की महिमा,
नवजात बाल यह बोला।। ६।।

थर - थर माँ काँप रही थी,
बालक को, दिल से सटाए।
पर कानाफूसी भीषण,
कैसे माँ काबू पाए?।। ७।।

सब बोल रहे यह राक्षस,
जो जन्म से बोल रहा है।
आश्चर्य अजूबा बालक,
इसको फेंको यह घातक।। ८।।

बत्तीस दाँतों वाला वह,
चम - चम चमकाया जग को।
पर पिता ज्योतिषी पण्डित,
नहिं माफकर सके उसको।। ९।।

लोगों की बातें सुनकर,
डर गए पिता पत्रा ले।
देखते ही मूल भयंकर,
छूलिया हो साँप छुछून्दर।। १०।।

अब पिता रामबोला का,
घबड़ाया था बिन देखे।
खेतों के भीतर गड्ढा,
खुदवाया ही खुद जाके।। ११।।

नहिं देख सका शिशु कैसा?
डर गया गाँव राजापुर।
आश्चर्य देखकर ऐसा,
सब भगे पलायन कर - कर।। १२।।

क्रूरता पिता का सुनके,
हुलसी ने निद्रा तोड़ी।
गोदी में चिपकाकर के,
वह मुनियाँ को बुलवायी।। १३।।

मरते - मरते माँ हुलसी,
मुनियाँ को सौंपी तुलसी।
दम तोड़ दिए पिता भी,
नहिं बचा वहाँ अब कोई।। १४।।

मुनियाँ बालक पा हर्षित,
अपने ससुराल चली थी।
अनुराग मातृ - पद लेकर,
नित दूध पिलाती रहती।। १५।।

समरसता की लोरी सुन,
बालक कहता था माई।
मुनियाँ कहती कुछ मत कह,
बस 'राम' बोल तूँ भाई।। १६।।

यह क्रूर प्रकृति की माया,
यह धूप बनी थी छाया।
उजड़े को वही बसावे,
तुलसी को दूध पिलावे।। १७।।

जो मन से राम पुकारे,
नहिं कोई और पहचाने।
उसको वह भला क्यों छोड़ें,
श्री रामचरित्र जो गावे।। १८।।

मुनियाँ निमित्त बन पाले,
लोरियाँ राम की गाए।
चुप होकर सुनता तुलसी,
जिसे सुना न पायी हुलसी।। १९।।

दाई थी पर माई थी,
उसमें ममता का सागर।
जिसकी किल्लोल लहर सी,
आवाज गूँजती तुलसी।। २०।।

उस बच्चे के रग - रग में,
हुलसी - हुलास बहता था।
इस क्रूर नियति के कारण,
जो दे न सकी माँ ममता।। २१।।

झटके से झंझा छाई,
नहिं दया उसे कुछ आई।
अमरबेलि मृत्यु की छायी,
ले गयी थी, मुनिया माई।। २२।।

अभी तीन वर्ष का बालक,
क्या जाने मरनी करनी।
माँ बुला रहा था हरदम,
पर कुछ नहिं मुनियाँ बोली।। २३।।

थक चुका था माँ-माँ कहते,
जब भूख लग गयी उसको।
आँचल को तुरत हटाये,
बोला माँ दूध पिला दे।। २४।।

अब दूध नहीं कुछ निकला,
सर बगल में सिर धुन सोया।
तबतक रथ चढ़कर मुनिया,
तुलसी सा बालक खोया।। २५।।

जब जागा नींद से बालक,
नहिं खाट पर थी प्रिय माई।
जो मिले माँगते खाते,
यह भिक्षा उसको भाई।। २६।।

बस चार चनों के कारण,
सबके दरवाजे जाता।
मिल जाता जो खा लेता,
गिरता उठ खेला करता।। २७।।

जब रात भयंकर होती,
डर जाता दीप बिना वह।
नहिं नींद उसे कभी आती,
जाग्रत रहता पृथ्वी पर।। २८।।

बिन रिश्तों के ही तुलसी,
बचपन से अलख जगाए।
श्रीराम नाम जप - जपकर,
प्रिय पेट का भूख मिटाए।। २९।।

नहीं कोई बसेरा उसका,
रह जावे वहीं सबेरा।
गिरता उठ चलता रहता,
प्रभु खातिर जीवन जीता।। ३०।।

निर्वस्त्र घूमता रहता,
पत्तों से तन ढँक लेता।
बालक गण मारे ढेला,
यह सब तुलसी ने झेला।। ३१।।

इस क्रूर नियति की चाबुक,
उसके अंगों पर लगती।
शिव देख सका नहिं यह सब,
मर्मान्तक पीड़ा, होती।। ३२।।

जाकर अन्नपूर्णा से तब,
शिव कहे शिशु की गाथा।
सुन सकी न माँ पीड़ा तब,
आँखों में आँसू छाया।। ३३।।

एक वृक्ष के नीचे माँ तब,
भोजन रख देती अमृत।
खाकर बालक भोजन वह,
पा चुका ज्ञान का अमृत!। ३४।।

इस तरह रामबोला को,
माँ अन्नपूर्णा अब पाली।
प्रिय भक्ति अमर देकर वो,
तुलसी के भीतर रहती।। ३५।।

सहजात दर्द जीवन का,
दुख-सुख के बीच पनपकर।
बन गया सत्य जीवन का,
जो प्रेम सींचता अबतक।। ३६।।

जीवन के प्रथम पहर से,
क्या नहीं जो उसने देखा।
हुलसी हुलास के रस से,
जीवन रुक-रुक कर चलता।। ३७।।

दूरियाँ ही उसका जीवन,
पर राम का किया हुजूरी।
सब रिश्ते नाते पूरन,
यह राम की थी मंजूरी।। ३८।।

क्या क्या न घटी थी घटना,
राजापुर गाँव ही छूटा।
पर राम बोलता रहता,
हनुमान रूप बन सोता।। ३९।।

करुणा से भींगा मन वह,
अपना दुख सहता जाता।
पत्थर सा तन लेकर वह,
पर पीड़ा नंहिं सह पाता।। ४०।।

घट गयी एक दिन घटना,
तुलसी जब खेल रहा था।
आदेश प्राप्तकर प्रभु का,
गुरु नरहर्यानन्द आया।। ४१।।

शुभ लक्षण देखा गुरु ने,
पढ़ लिया ललाट की रेखा।
तुलसी को गोद उठाए,
खींचे प्रिय समरस रेखा।। ४२।।

उस बालक अन्तर्मन को,
छूकर आह्लादित होते।
पाकर विराट का दर्शन,
गुरु खुद . आनन्दित होते।। ४३।।

यह अद्भुत प्रेम की लीला,
बालक न समझ पाता था।
कंगाली जीवन भर का,
एक क्षण में दूर हुआ था।। ४४।।

पारस पत्थर को परखे,
श्री नरहरि आनन्द गुरु थे।
गुदड़ी के लाल को पाए।
अपलक बालक को देखे।। ४५।।

कुछ देर देखते रहकर
बोले बालक से ऋषिवर।
अब थके बहुत तूँ यहाँ पर
मेरे संग चल तूँ सत्वर।। ४६।।

दोनों तब हाँथ मिलाए
पहचान पुरानी मानो।
नहीं आनाकानी कोई
भव-बेड़ा ही गुरु मानो।। ४७।।

बालक की उँगली पकड़े
ले गए स्वतः आश्रम में।
अक्षर का ज्योति जगाए
गुरु तब तुलसी के मन में।। ४८।।

गाथा श्रीरामचरित का
उस सूकर क्षेत्र में बहता।
श्रीराम शैल मनभावन
अति उत्तम स्थान चमकता।। ४९।।

तम रज का भार नहीं था
बस प्रीति की शीतल छाया।
सात्विक मन उस तुलसी का
यहाँ पूरन प्रेम को पाया।। ५०।।

सोरो की धरती पावन
पक्षी दल भी मँडराते।
सब प्यासे प्यास बुझाते
श्रीराम कथा जल पीते।। ५१।।

तुलसी भी प्रिय जल पीता
पर तृप्ति न होती उसको।
उस भूमि से उड़कर जाता
शिव खुद, कथा को कहता।। ५२।।

सुनते सुनते रसपूरन
वह कागभुशुण्डि की लीला।
अनुराग सगुन का रखकर
कर देता निर्गुन व्याख्या।। ५३।।

गौरी का अन्न वह खाकर
शिव का ऋण सदा चुकाया
कर मातृपद का वन्दन
आनन्द नगर ऋषि पाया।। ५४।।

वक्ता ऋषि श्रोता तुलसी
खुद वाल्मीकी ही आया।
इस धरती ऊपर तुलसी
पौधा बनकर हरषाया।।५५।।

ऊसर हो या डाभर हो
तुलसी पौधा लग जाता।
यह राम भाल की शोभा
औषधि बन जीवन देता।।५६।।

बिजली कड़के हो वर्षा
या सावन झूला झूले।
चाहे पाँव जले गर्मी से
पर राम-कथा नहि भूले।।५६।।

पन्द्रह के हुए थे तुलसी
फिर आए काशी गुरु संग।
गुरु दीक्षित करने खातिर
ढूढ़े ऋषि शेष सनातन।।५७।।

योग्यता देख बालक का
सम्मान किए तब ऋषिवर।
सर्वस्व सौंपकर अपना
वेदान्त पढ़ाए मुनिवर।।५८।।

इतिहास - पुराण रामायण,
चारों वेदों का प्रकरण
जाने उपनिषद आरण्यक
नहीं बचा शेष कुछ प्रकरण।।५९।।

व्याकरण सहित्य के ज्ञाता
षट दर्शन के व्याख्याता।
श्री रामचरित रस दाता,
हनुमान कथा भी गाता।। ६०।।

माधुर्य प्रभामय आनन
दीपित था वसुधा तल पर।
अध्ययन तेज की ऊर्जा
छविमान कर रहा भूतल।। ६१।।

✪

तुलसी का गृह गमन तथा रत्ना के साथ विवाह

आश्रम से विद्या पाकर,
तुलसी आया राजापुर।
घर टूटा फूटा खंडहर,
ताला लटका था बाहर।। १।।

नहिं शेष बचा था कोई,
पर माटी खातिर आया।
इस राष्ट्रभूमि की काया,
तुलसी को सदा सुहाया।। २।।

जहाँ हस न सका था शैशव,
यौवन का प्यार ले आया।
प्रिय मातृभूमि का वैभव,
देखने को तुलसी आया।। ३।।

अनुराग रंग की लाली,
दीपित करती थी मन को।
पर माता - पिता न पाकर,
पाता अकेला अपने को।। ४।।

अभिलाषा उमड़ रही थी,
अवलम्ब न पाता तुलसी।
घर लीप पोत स्वच्छित कर,
सुख पाता रहता तुलसी।। ५।।

सौन्दर्य सार की मृदुता,
जब खेल रही सागर से।
उसकी लावण्य सरसता,
पी बढ़ी रतन क्षण - क्षण में।। ६।।

तुलसी निमित्त बनी थी,
प्रिय रस से सनी भरी थी।
आत्मवत् दिव्यता उसकी
तुलसी विचार लहरी थी।। ७।।

कौमार्य भार स्वाभाविक,
उसके मुस्कान से बहता।
यह देख पिता राजापुर,
थककर भी जाके पहुँचा।। ८।।

माधुर्य रूप की सज्जा,
शुचि शील भरी कोमलता।
पाण्डित्य बोध की ऊर्जा,
तुलसी में पिता ने पाया।। ९।।

नम्रता सहज स्वाभाविक,
आकर्षित करती उनको।
ज्ञानी की झुकी वो आँखे,
मन - मन भाती थी उनको।। १०।।

दीनबन्धु देखकर खुश थे,
वर योग्य रसिक मनभावन।
आश्चर्य चकित हसते थे,
रामबोला सच मनभावन।। ११।।

रत्ना का पावन परिणय,
यदि होगा उचित इस वर से।
जीवन सौभाग्य खिलेगा,
दोनो के संग बसने से।। १२।।

प्रस्ताव रख दिया आखिर,
चुप होकर युवक खड़ा था।
कुछ दे न सका प्रत्युत्तर,
संयोग से योग बना था।। १३।।

घर जाकर पिता बताए,
और लग्न - पत्रिका खोले।
मिल गया 'रतन' का गुण जब,
तुलसी से जाकर बोले।। १४।।

बारात उठी थी ऐसी,
जैसे शिव के बाराती।
उसका न सगा था कोई,
जिसको भेजे वह पाती।। १५।।

मित्रों में पण्डित आए,
जो आश्रम के सहपाठी।
गुरुजन भी सुनकर आए,
बारात बना संन्यासी।। १६।।

कोई गेरुआ धारण करके,
लिए सड़सा बड़ा कमण्डल।
कोई छापा - तिलक लगाए,
उल्लसित हो रहा मण्डल।। १७।।

जब अच्छत फेंकी रत्ना,
सब कुछ फीका - फीका था।
पर डोली भीतर बैठा,
उसका मन जीत चुका था।। १८।।

चुम्बकीय शक्ति दो दिल का,
आँखों से एक हुआ था।
अब झलक रही थी रत्ना,
मन में अनुराग जगा था।। १९।।

बारात मुड़ गयी पीछे,
शहनाई मादक बजती।
धुन रत्ना उसकी सुनके,
पायल खनकाया करती।। २०।।

रस्मो रिवाज पूरा कर,
अब कन्यादान हुआ था।
पूरा कर सातो फेरा,
सिन्दूर - दान हुआ था।। २१।।

तुलसी को ऐसा लगता,
जैसे जादू का खेला।
जीवन में जो कुछ खोया,
वह आज अचानक पाया।। २२।।

रस्मों - रिवाज सब रीतें,
चुपचाप कर रहा पूरा।
प्रिय लगती सबकी बातें
अब तक यह सब नहीं जाना।। २३।।

कोई प्रणाम कर जाता,
कोई हल्दी - दही लगाता।
जिसके मन को जो भाता,
वह तुलसी पर अजमाता।। २४।।

आयी सासू माँ पारी,
टकटकी लगाकर देखीं।
जामाता जैसे तुलसी
अबतक उसने नहिं देखी।। २५।।

काजल माथे पर लगाकर,
वह नजर उतार रही थी।
यह देख प्रीति का सागर,
तुलसी में उमड़ पड़ी थी।। २६।।

अब तक जो पूँजी छिपी थी,
माँ गाँठे खोल चुकी थी।
छिप - छिप कर देती जाती
माँ रत्ना सुफल हुयी थी।। २७।।

अब मौन तोड़कर तुलसी,
माँ के चरणो को छूआ।
कौधा बिजली माँ हुलसी,
विश्वास आस सब पूरा।। २८।।

चरणों में बाल झुका था,
माँ ने गोदी से लगाया।
भरपूर हुआ - सब रिश्ता,
तुलसी अब सबको पाया।। २९।।

विश्वास मातृ - पद वन्दन,
आँखों में कल - कल, करता।
माथा सहलाती माँ जब,
आँखों से पानी बहता।। ३०।।

पारस्परिक प्रेम की धड़कन,
धड़की थी तुलसी में अब।
रिश्ता अचूक यह कोमल,
रस छलकाता था हरदम।। ३१।।

सखियों ने मिल जुलकर तब,
झकझोरी बरजोरी की।
मुसकान विखेरकर तुलसी,
उन सबको भी खुशियाँ दी।। ३२।।

भावज मजाक करते करते,
तुलसी को तंग कर देती।
सालियाँ चुराती जूते
इस तरह रात वह बीती।। ३३।।

अब भोर हुआ चिड़ियाँ चहकी,
मिल सोनजुही परिहास करे।,
मेरी रत्ना नाजुक सी कली,
अपने घर में कैसे रखे?।। ३४।।

चिड़ियों का बोल सुहावन यह,
मीठी गाली सा लगता।
तुलसी देखा ससुराल का घर,
जहाँ प्यार निराला मिलता।। ३५।।

अब विदा की आई लगन घड़ी,
रत्ना सँभाल न पाई थी।
माता के आँचल से लिपटी,
क्यों भेज रही बस कहती थी।। ३६।।

तोता पिंजरे में रोता था,
गाएँ चिल्लाती खूँटों पर।
घर की खिड़की दरवाजा सब,
रत्ना - रत्ना, कहता चरमर।। ३७।।

यह दृश्य देख तुलसी बिलखे,
करुणा का सुखद बसेरा था।
नहिं देख सके मार्मिक प्रकरण
रह - रहकर आँसू गिरता था।। ३८।।

इस तरह विदाई का अवसर,
रोमांचित कर देता सबको।
पर विदा हुए दम्पति नव,
नूतन घर आज बसाने को।। ३९।।

✪

तुलसी रत्ना मिलन और दाम्पत्य जीवन

सौन्दर्य अमृत. रस - सागर
मणि–माणिक रत्न उगलता।
देखा जो नहीं अभी तक
उसको आँगन में पाया।। १।।

निर्द्वन्द चेतना निर्मल
बस झाँक रहा अंगो से
डालें अवगुण्ठन दुलहन
तेजोमय दिखती मन से।। २।।

उसके मुख की मणि - आभा
उज्ज्वल करता था आनन
झिलमिल प्रकाश का आना
अनुराग बिखेरती चमचम।। ३।।

चंचल चितवन का लुक - झुक
कर देती रस की वृष्टि।
आँखों का काला आजन
सत के भीतर तम सृष्टि।। ४।।

अनुराग राग आलोड़न
मस्ती. का चमचम छमछम।
मन से मन का अवगाहन
माधुर्य तरंगित हरदम।। ५।।

अवगुण्ठन भूल चुका मन
अंकुशमय लज्जा गुम्फन
भव से ऊपर भावुक मन
कर् रहा सब सर्वस अर्पन।। ६।।

यह द्वैत - भाव संयोजन
सांसारिक रचना माध्यम।
दोनो को होता धड़कन
अब कौन बने रस माध्यम।। ७।।

पहला आनन स्पर्शन
मिलने का आनन फानन
करती फुस-फुस ध्वनि कंपन
झरना बहता ज्यों छन - छन।। ८।।

बोले कौन किससे पहले?
सोचे दोनों चुप बैठे।
अनमोल रूप रस पीते
हिम्मत न पड़ती बोले।। ९।।

ओठों तक आती बाते
पर अधर नहीं खुल पाते।
माधुर्य भाव जगाके
भग जाती जैसे छिपने।। १०।।

हाँ - ना की गहरी हुंकारी
अब शुरू हुयी धीमें से।
रत्ना विश्वास से छू दी।
जादू कर दी नयनो से।। ११।।

अनुराग रंग मधुशाला
ओठों को आकर रंग दी
तुलसी मतवाला प्याला
चितवन से अपने भर दी।। १२।।

स्फुट स्वर धारा फूटी
जीवन सतरंगी रंगने।
दोनो की वाणी नयी सी
पर परिचय लगे - पुराने।। १३।।

कालावधि क्रम को भूले
दम्पति मधु रस में डूबे।
तुलसी रत्ना में सरसे
रत्ना तुलसी में सोए।। १४।।

समरसता की शैय्या पर
रस केलि कर रहे दम्पति।
वह चन्द्रकिरन सूरत पर
प्रिय सुधा धार की सम्पति।। १५।।

आनाकानी हूँ हाँ में
निशि झाँक रही ऊषा को।
अब सुबह न हो दोनो के
यह सोच रहे थे दोनों।। १६।।

महुवा के फल के जैसा
टप - टप चूता रस उनमें,
प्रेमांकुर मन का कोना
रसकेलि कर रहा उनमें।। १७।।

यह निखिल चेतना समरस
सराबोर किया दोनों को।
नहिं टिक पाता कोई रस
शुभ प्रेम मिला दोनों को।। १८।।

शब्दों का ताना - बाना
रेशमी भावना बुनता।
दर्पण में दीपित मन का
जो कोना झाँका करता।। १९।।

अब झिझक भाग खड़ा था
विश्वास भरा निष्ठित मन।
पुलकित रसराज मिला था
यौवन - विलास का सावन।। २०।।

प्रेमीमन की प्रिय-प्रियता,
का माप न शब्द कर सकता।
झुक शब्द वन्दना करता
मन - दरवाजा खुल जाता।। २१।।

शृंगार प्रेम की जोड़ी
युग का समाधान किया है।
ऐश्वर्य प्रभा बरजोरी
नयनो का मान किया है।। २२।।

वास्तव में तुलसी रत्ना
है उस विराट की काया।
जहाँ नहीं भिन्नता तन का
आवरण न बनती माया।। २३।।

अति सूक्ष्म था ताना - बाना
जो जन्म जन्म से ग्रंथित।
आत्मीय सात्त्विकी मृदुता
रस संचारित करता केन्द्रित।। २४।।

विद्युत सम क्रीड़ित प्रिय रस
मन को करता आलोकित
दोनों की क्रीड़ित मुद्रा
चिकनाई से था दीपित।। २५।।

तुलसी यदि था जंगम तरु
रत्ना कोयल थी उसकी।
दोनों का ऐक्य समन्वय
अनुराग बिखेरता मन की।। २६।।

रस राम स्वयं चखने को
भँवरा बनकर मडराता।
तुलसी की राम कथा को
सीता संग सुनने आता।। २७।।

यह शब्द - भाव की जोड़ी
युग-युग की अमिट कहानी।
दोनों की प्रतिछाया सी
जोड़ती संस्कृति सुहानी।। २८।।

राष्ट्रीय भाव ओजस्वी
दोनों के भीतर बहता।
रत्ना कहती जो कुछ भी,
उसको तुलसी सुन लेता।। २९।।

रत्ना तुलसी दोनों में
प्रिय - राम - सिया परिभाषित।
युग नाप न सकता उनको
बालिदान स्वयं से शासित।। ३०।।

तन तो नश्वर धरती पर,
मरता मिटता नित जुटता।
पर मन की मनका सुन्दर
मणिमाला बना चमकता।। ३१।।

मनका की मोती अनुपम
शोभित तुलसी के आगे।
रत्ना कुर्बानी देकर
राष्ट्र भाव जगायी सबमें।। ३२।।

कल्पना नहीं गाथा यह
राजापुर में ही घटा है।
तुलसी की ज्ञानप्रभा वह
रस राम रसायन दी है।। ३३।।

✪

रत्ना का मायके जाना

इस तरह गृहस्थी गाड़ी
रत्ना तुलसी की चल दी।
पूर्णत्व भाव प्रेमी की
दोनों के भीतर जागी।। १।।

सामाजिक मर्यादा पर
दोनों मिल बातें करते।
खंडित मूर्ति संस्कृति सब
दिल में काँटा सम चुभते।। २।।

यह सोच भरा था उनमें,
पर दिया नहीं मिल पाता।
बातों का सिलसिला चलके
फिर दीपक सम बुझ जाता।। ३।।

कोई पण्डित कोई मुल्ला
अपनी पूजा करवाता।
कोई निर्गुण-सगुण के भीतर
दीवार खड़ा कर देता।। ४।।

शिव - शक्ति, राम नहिं दूजा
उसमें भी भेद करवाता।
अहंकार धर्म का अपना
बस करता था बटवारा।। ५।।

मर्यादित जीवन तुलसी
हरदम तलाशता रहता।
अपनी पीड़ा को पीता,
पर पीड़ा नहिं सह सकता।। ६।।

इस तरह गृहस्थी का रथ,
मिलजुल कर वस्तु जुटाता।
पुरुषार्थ चार आकर खुद
मड़ई को सहज बनाता।। ७।।

पर घटना घटी अनोखी
जो दोनों की पीड़ा थी।
उस ईश्वर की लीला थी,
जीवन – धारा को बदली।। ८।।

एक दिन रत्ना का भाई
भगिनी को लेने आया।
तुलसी से बोला, भाई
ले जाऊँ भगिनी जीजा।। ९।।

क्योंकि बीमार है माई
रत्ना भी जाना चाही।
छोड़े उसे कैसे तुलसी
कुछ बात समझ न आयी।। १०।।

पर ठगे रह गए तुलसी
लूटा ठग जैसे निधि को।
पानी बिन जैसे मछली
उस तरह तड़पते थे वो।। ११।।

जब से घर आई रत्ना
पीड़ा का शूल मिटा था।
कैसे उस बिन बीतेगा
यह तुलसी सोच रहा था।। १२।।

जिस दिन से जन्म हुआ था
बस दर्द ही दर्द मिला था।
जबसे आई प्रिय रत्ना
जीवन सौभाग्य खिला था।। १३।।

करके मन से बरजोरी
भाई से बोले तुलसी।
ले जाना तुम्हें जरूरी
पर रात आज ले आना।। १४।।

बोली तुलसी से रत्ना
अब तक तो नहीं गयी हूँ
पर रोगी माँ से मिलकर
कैसे जल्दी लौटूँगी।। १५।।

परिताप अलग होने का
दो चार दिनों तक सहना।
रख दी हूँ सतुआ दाना
लेकर खा काम चलाना।।१६।।

कृष्णा का दूध - दही तुम
ठाकुर को भोग लगाना
जल्दी आऊँगी प्रियतम
मत रोना खुश हो रहना।।१७।।

सान्त्वना बहुत कुछ देकर
भाई के साथ गयी रत्ना।
अनहोनी ठोकर देकर
अब बिदा हो गयी रत्ना।।१८।।

पत्नी की बातें सुनकर
बल मिला क्षणिक बस उनको
निकली घर से जैसे वह
गिरते पकड़े - चौखट को।। १९।।

कुछ देर सुस्त हो सोए
उठकर कुछ भी नहिं भाए।
क्या करूँ? समझ नहीं पाए
द्विविधा ही मन को खाए।। २०।।

दिन बीत गया, निशि आई
सूना घर लगा भयंकर।
नहिं खाए पीए कुछ भी
कैसे वे रहते घर पर।। २१।।

चक्कर आया तुलसी को
क्या से क्या उसपर बीता।
बचपन की बीती बातें
उसको न करती रीता।। २२।।

रुनझुन रत्ना का पायल
मन में मधु - बोल जगाती।
मिलने को था मन उत्सुक,
कर्त्तव्य खड़ा पद रोकी।। २३।।

सामाजिक जीवन लज्जा
पथ की बाधा बन बैठी।
यह उचित न होगा जाना
कर देती रोका - छेकी।। २४।।

कुछ घड़ी द्वन्द्व से घायल
मन उहापोह में भटका।
कोई होनी रोक न सकता
आतुर मन बन्धन भूला।। २५।।

बन्धन बस बन्धन होता
यह प्रेम बाँध सकता नहिं।
भावुक मन पीड़ा सहता
पथ को न रोक सकता कहीं।। २६।।

आगे न पैर बढ़ता था
पीछ न पैर मुड़ता था
उलझन मोहित कर देता
प्रिय से मिलने का मन था।। २७।।

वैचारिक आघातों को
जब सह नहिं पाया तुलसी
मन का विश्वास जगाके
ससुराल चल पड़ा तुलसी।। २८।।

विश्वास प्रीति को लेने
याचक की भाँति चला था
सीमित बन्धन लघु खोने
सजनी में आज चला था।। २९।।

सीमा न बाँध सकती कभीं
ऊर्जा प्रकाश का मृदुजल।
प्रिय कली सुगन्ध समायी
जैसे कलियों पर अलिदल।। ३०।।

बड़ी सँकरी प्रेमगली यह
इसके भीतर दो बसते।
आभ्यांतर सजन सरोवर
मिलकर स्नान संग करते।। ३१।।

दो एक हुए थे मन से
मचलाता तन मिलने को।
भावना दबी न दबाए
रुकते न पाँव जाने को।। ३२।।

अपनापन था कुछ न्यारा
यह सहज प्रीति की धारा।
छिप - छिपकर मिलना प्यारा
आदेश चेतना स्वर का।। ३३।।

नभ गरज रहा था ऊपर
मन बरस रहा था भीतर
रत्ना का आस जगाकर
बढ़ता वह आगे पथपर।। ३४।।

मर्यादा तोड़ चला था
अनजान तपस्वी मानस।
कीचड़ बीच कमल खिला था
रत्ना का दीप उजागर।। ३५।।

ऊपर से जोड़ियाँ बनती
युग-युग में बनी कहानी।
सूरज चन्दा सब साथी
यह धरती प्रीति कहानी।। ३६।।

यह मार्मिक कथा मनोहर
भोले मन की शुचि पीड़ा
आँखों में आँसू भरकर
लिखती हूँ दम्पति क्रीड़ा।। ३७।।

तुलसी का ससुराल जाना
रत्ना का मर्यादा बोध कराना

आ गया पुजारी घर तक
प्रिया ढूढ़ रहा था।
वह दबे पाँव रुक रुककर
मंजिल को प्राप्त किया था।। १।।

लज्जा पद रोक रही थी
पर कबतक बनती बाधा?
ऊपर वाले ने रच दी
यह नयी मिलन की गांथा।। २।।

आँखों से हटे न सूरत
बसीं पवित्र वह मूरत।
भोली रत्ना खूबसूरत
जैसे विराट की मूरत।। ३।।

रत्ना नहिं देखी उसको
पर तुलसी देख चुका था।
मड़ई भीतर पिछवाड़े
वह डेरा डाल चुका था।। ४।।

सम्भाव्य मिलन की प्रतिमा
क्षण - क्षण पुकारती उसको।
यह सहज स्नेह भरी काया
रससिक्त कर चुकी उसको।। ५।।

जहाँ सोयी उसकी रत्ना
दरवाजा बोल रहा था।
आवाज भरी दस्तक सुन
प्रिय रतन का नयन खुला था।। ६।।

देखें आगे प्रिय पति को
जो द्वार खड़ा था योगी।
झकझोर दिया जों 'स्व' को
तब दशा देख प्रिय बोली।। ७।।

यह पूर्ण प्रेम की निष्ठा
वह झाँकी प्रिय के मन में।
बलिदानी मन की छाया
अब उभर चुकी चेतन में।। ८।।

उस समय मुगलिया शासन
सत्ता का था अधिकारी।
क्रूरता से मुक्ति कैसे हो?
इसलिए रतन थी चिन्तित।। ९।।

संकल्प - विकल्प की रेखा
एक निर्णय को थी आतुर
अवसर इससे नहीं अच्छा
इसलिए सोचती उत्तर।। १०।।

सांस्कृतिक विखंडन उसको
करता था हरदम व्याकुल।
समझी लायक प्रिय पति को
बन गयी वज्र सम दृढ़ वह।। ११।।

राष्ट्रीय भाव भावित मन
वासना को मार भगाया।
शिवता जागृत उद्बोधन
उसके भीतर था समाया।। १२।।

लक्ष्मी लगती थी रत्ना
पर गौरी सम शिव कान्ति।
जानकी की करुणा धारा
उसके अन्दर की सीपी।। १३।।

आदर्श भाव सम्पूरन
रेखा यथार्थ का सचमुच।
तन के मुकाम का मंजिल
वह छोड़ चुकी मन से कुछ।। १४।।

जैसे शिव नेत्र खुला हो
उस तरह नयन था गर्वित।
सरस्वती स्वयं जिह्वा को
आकर कर दी थीं मुखरित।। १५।।

उसमें विश्वास जगा जब
तब क्या करना? समझायी।
अवलम्ब राम का लेकर
धीरे से पति से बोली।। १६।।

तुम इतने भोले हो प्रियतम
काया से प्रेम करो मत।
नश्वर जग, चमक - दमकमय
चेतना सँभाल उठो अब।। १७।।

इस अस्थि चर्ममय तन से
क्यों इतना प्रेम तुम करते?
यह झूठी काया देखो
अब देखके - आगे बढ़ लो।। १८।।

श्रीराम प्रीति ही सच है
उसका ही न्याय बस सच है।
राष्ट्रीय प्रतिष्ठा सच है
मुझको भी त्याग दो सच है।। १९।।

इतना है प्रेम इस तन से
श्रीराम प्रेम है बढ़कर।
चुन लो विराट को मन से
जो काया बीच समुन्दर।। २०।।

मन की पुकार मेरे अब
सुन लो तुम मेरे स्वामी।
लज्जा लगती है मुझको
बनो राम प्रेम अनुगामी।। २१।।

वह देख रहा था अपलक
मुख से उत्तर नहिं निकला।
जड़वत् निहारता स्वप्निल,
जैसे एक सपना टूटा।। २२।।

वह समझ न पाया कुछ भी
क्या यही है प्यारी रत्ना?
इतनी सच्ची है नारी
सुन, समझ न पाया घटना।। २३।।

जीवन भर से था भोला
जग का छलना ही देखा।
नीरस चेतावनी पाके
वह मिटा न पाया लेखा।। २४।।

उस शून्य नगर से मुड़कर
शून्यता ढूढ़ने निकला।
अम्बर निहारता सत्वर
विश्वास न मन से निकला।। २५।।

मन की पुकार का दस्तक
बरजोरी करता उससे।
संज्ञा विहीन होकर वह
उठ गिरता, थक भीतर से।। २६।।

भूली बिसरी सब बातें
यादों के बीच उभरती।
करती मूर्च्छित उसको वे
नश्वर है - याद दिलाती।। २७।।

रत्ना के द्वारा ही वह
प्रिय - पथ पर आज बढ़ा था।
जीवन का केन्द्रित स्वर वह
श्वाँसों के बीच मिला था।। २८।।

श्रीराम चरण के प्रति रति
तुलसी में भर दी रत्ना।
मन - मुदिता को भी मथ दी
कवियित्री प्यारी रत्ना।। २९।।

पति को वह ढाल बनाकर
की रामचरण में अर्पित।
यदि 'मानस' आज न होता
भारत हो जाता खंडित।। ३०।।

बलिदान रंग सिन्दूरी
राष्ट्रीय चेतना ध्वज बन।
संकेत समन्वय देकर
करती मस्तक को उत्थित।। ३१।।

अपना प्रिय पति वह देकर
जीवन भर थप्पड़ खायी।
अलगाव भरा जीवन यह
कोई कर न सका भरपाई।। ३२।।

तुलसी को राम मिला था
पर रत्ना पड़ी अकेली।
भीतर एक दर्द छिपा था
जिसे देख न पाया कोई।। ३३।।

अब छूट चुका सब स्वसुख
भौतिकता आड़ न आती।
जागती अग्नि शिखा बन
तुलसी की प्रभा प्रभाती।। ३४।।

आध्यात्मिक जीवन चिन्तन
पति - पत्नी मन ही जाने।
संयोग - विरह मिलन यह
कैसे कोई पहचाने?।। ३५।।

रत्ना का साहस कायम
तुलसी की अक्षर मनिका।
शिवता का दीप जलाकर
रचना को सजाती रत्ना।। ३६।।

रत्ना विछोह का आदर्श परिणाम

–रामचरित मानस

भारतीय संस्कृति का गति अवरोधक,
उसका मन कभी सह न सका।
सजल प्रीति का नूतन छलछल,
'मानस' का रस सार बना।। १।।

पूर्णपीर की पृष्ठभूमि पर,
पूर्ण चरित रस लिखा गया।
रत्न जटित लेखनी संपूरन,
भाव – भव्यता खींच गया।। २।।

रोता गाता तुलसी छोड़ा,
गाँव की धरती राजापुर।
गया अयोध्या राम से मिलने,
पाया मन का सुख सागर।। ३।।

दुनियाँ का गम भूल गया सब,
परमानन्द की सुधर गली।
छकछक पीता राम सुयश यश
जिसके नीचे सभी गली।। ४।।

महावीर का संग मिला था,
फिर पीर कैसे रहती?
पोर–पोर में राम बसा था,
सीता माँ न पृथक रहती।। ५।।

उस विराट की छाया जिस पर,
फिर माया क्या कर सकती?
तुलसी राम पर सदा निछावर,
भक्ति सरस रस मणि तुलसी।। ६।।

आँसुओ का मोल चुकता,
कर सका न गिरा सका।
पी गया सब दर्द भव का,
प्यार प्रभु का पा गया।। ७।।

वह अतीत भुला चुका अब।
द्वन्द्व के बाहर दिशा।
विषम का विषपान करकर,
लिख दिया 'मानस' सरस।। ८।।

विश्व का यह सुखद वाङ्मय,
बन चुका यज्ञ - भूमि महमह।
ज्ञान भक्ति सुकर्म सुरभित,
छन्द लयमय, गान गतिमय।। ९।।

ज्ञात और अज्ञात का,
अभिमान खोता चल गया।
सन्त और असन्त तक का,
विषम चरण वह छू लिया।। १०।।

कोई उस पर व्यंग्य करता,
पर थका नहीं हारता।
राम का सम्पूर्ण आश्रय,
प्राप्त कर बस लिख रहा।। ११।।

कोई अभागा अब न कहता,
भगवान उसको चाहता।
मिल गया खुद राम उसका,
'काम' अब क्या बिगाड़ता?।। १२।।

घात और प्रतिघात का,
झटका लगा बस एक ही।
सती का बलिदान लिखकर,
लेखनी ऊपर उठी।। १३।।

रतन छूटी, जगत छूटा,
मिल चुका प्रभु प्रेम पथ।
माँ सिया का मातृपद पा,
चरण से लिपटा पथिक।। १४।।

माँ न छूटे डर था उसको,
श्वाँस में रखता सजाकर।
राम - सिय की प्रीति निश्चल,
कवि हृदय करता उजागर।।१५।।

द्वैत से अद्वैत होना,
नहीं अच्छा लग रहा।
इसलिए सिय - राम प्रियता,
सरस हो खुद छा गया।। १६।।

जिस तरह स्वर से अलग,
व्यंजन कभी न रह सका।
उस तरह सिय - राम चरित,
लोक - हित से जुड़ चला।। १७।।

बलि दिशा का लेख मानस,
सांस्कृतिक उन्मेष है।
भावना को समेटता यह
कर्म का अभिलेख है।। १८।।

रामराज्य विहाग सरगम,
कृति सुयशमय गान है।
भारतीयों पाओ जीवन,
सांस्कृतिक विहान. है।। १९।।

लोक - मर्यादा का वाहक,
प्रीति रस वरदान है।
भक्ति ज्ञान शिवम् सुसज्जित,
सत्य पथ का ज्ञान है।। २०।।

भाव सुन्दर; काव्य सुन्दर,
छन्द सुन्दर बोध है।
भाषायी स्वर मधुर सुन्दर,
यह अनन्त का बोल है।। २१।।

मिला शिव वरदान इसको,
कागभुशुण्डि स्वर बोध है।
गरुण गौरी सुने इसको,
श्रुति सम्पादित काव्य है।। २२।।

याज्ञवल्क्य कहे कथा यह,
सुने ऋषि भरद्वाज थे।
ऋषियों की चर्चा में कथा यह,
तुलसी मानसकार थे।। २३।।

राम पैदा जब हुए,
वाल्मीकि भी उस समय थे।
क्रौंच पीड़ा सह सके न,
रामायण के सृजक थे।। २४।।

लिख दिए यथार्थ, सीता,
पीड़ा से पीड़ा लिए।
नारी की सम्मान रक्षा,
रामायण लिखकर किए।। २५।।

यथार्थ की आदर्श परिणति,
मानसकार ने कर दिया।
राम सीता एक कर वह,
'परित्याग' माँ का नहीं लिखा।। २६।।

वाल्मीकि स्वयं है तुलसी;
दिव्यता कवि छन्द का।
हिन्दी की मानस है बिन्दी,
भाल जिससे चमकता।। २७।।

निगम - आगम तत्त्व का,
परिणाम तात्त्विक बोध मानस।
सरसता और सरलता का,
पुण्य - पाप निषेध मानस।। २८।।

रतन का यह भाव मनहर,
जिन्दगी का विजय यश।
सिय प्रियतमा प्रेम मानस,
राम का आख्यान रस।। २९।।

प्रेमपूरन जल से सिंचित,
नहीं किंचित वासना।
जाति बन्ध - यह तोड़ती,
जिन्दगी की साधना।। ३०।।

दास तुलसी लिख दिया,
मालिक की कर आराधना।
भूखा वह सोता रहा,
पर छोड़ दी जग - याचना।। ३१।।

मॉँगता बस राम से,
सप्त सरवर तीर्थ से।
पान करता अमृत उससे,
जनक - जननी योग से।। ३२।।

✪

रत्ना का चिर विरह

खिड़कियाँ झाँकती रत्ना
मन का प्रतीति दौड़ाता।
दिखता न प्रियतम अपना
लगता देखा एक सपना।। १।।

कहने को उस समय कह दी
गुरुता का बोध जगाकर।
पर अब न समझ पांती थी
प्रिय प्राप्त स्नेह को तजकर।। २।।

विश्वास उसे अब भी था
आवेगा भोला मेरा।
कभी भूल न पावेगा वह
प्राणों का प्रियतम मेरा।। ३।।

उम्मीद जगाकर ऐसा
तिल - तिल क्षण काट रही थी।
जीवन का जीवित बन्धन,
मुक्तात्मा काट रही थी।। ४।।

अब जीना भी क्या जीना
खारा समुद्र बन जाती।
जागते ही जीवित रहना
पिय नाम की लेकर थाती।। ५।।

बेकसी नयन की रहती
छिप - छिपकर नयना धोती।
देखे यदि कोई कभीं भी
वह आँख छिपाती रहती।। ६।।

बरसात भी आती छमछम
हरियाली सुन्दर लेकर।
सखियाँ गाती थीं सस्वर
मनभावन सावन - झूमर।। ७।।

स्वर्णिम सूरज आँगन को
नहला देता धूपित हो।
लगता जैसे प्रियतम हो
आत्मीय आज आया हो।। ८।।

रत्ना के लिए सब स्वप्निल
झूला निहार कर रोती।
ठिठकी सी देख रही सब
इन्तजार हमेशा करती।। ९।।

यौवन का प्यार गया सब
शृंगार भी रूठ गया अब।
दिन बीता रात मिली अब
स्वर्गिक क्षण बीत गया सब।। १०।।

कोई कहता भगा दी दूल्हा
कुछ उत्तर दे न पाती।
कोई कहता तुलसी भगोड़ा
कानों को बन्द कर लेती।। ११।।

तानों से घायल होकर
भरती पानी कुँए पर।
जल छिड़क - छिड़ककर खुदपर
ठंडक पहुँचाती मन पर।। १२।।

जड़ बन जाती थी अक्सर
माधुर्य सूख जाता तब।
पति की यादों में रमकर
चलती रहती वह हरदम।। १३।।

कहीं भटक गयी थी मधुरिमा
रमणीय रम्यता लेकर
थक बैठी जीवन से वह
पैरों के छाले लेकर।। १४।।

प्रियतम को पाती लिखती
चिड़ियो से भेजा करती।
पशुओं की सेवा करती
उसको कभीं नीद न आती।। १५।।

मेहदी सूखी हाँथों की
वेणी माला मुरझायी।
अधरों की लालिमा खोयी
इन्तजार सदा साजन की।। १६।।

माँ बाप न कोई था अब
भाभियाँ व्यंग्य से हँसती।
सांस्कृतिक धन्यता खातिर
रत्ना सब सहती रहती।। १७।।

आलता न पैरों में था
नख की लाली भी खोयी।
बह चुका आँख का काजल
पति के वियोग में सोयी।। १८।।

कोई न काम था उसको
जीवन को नवरस सौंपी।
प्रज्ज्वलित दीप तुलसी को
प्राणों का प्रिय रस सौंपी।। १९।।

अंगारों पर ही चलती
रोके से भी न रुकती
कहीं भेदभाव न करती
रोटियाँ बाँटकर खाती।। २०।।

भावानुभूति छिल - छिलकर
भीतर समुद्र बन जाता।
प्रियतम अपना न पाकर
नयनों में आँसू भरता।। २१।।

दिन - रात अश्रु को पीना
घायल करता था जीना।
वह हँसना और मुसकाना
ज्यों अस्त सूर्य का छिपना।। २२।।

लहरें न ठहर सकीं अब
दुनियाँ उलझाती रहती।
गुपचुप संकेत भी सुन वह
कानों को बन्द ही रखती।। २३।।

माटी की मूरत बनकर
गढ़ती रहती रस प्याला।
भरती उसमें अश्रुजल
जिसे पिया न पीनेवाला।। २४।।

अविरल गिरता था पानी
चिर-विरह भरा ज्वालामय
घिघ्घियाँ बनी रह जाती
रुक - रुककर श्वाँसें आतीं।। २५।।

मर्माहत हो घायल थी
यह जान सका न कोई।
व्यक्तिगत भाव सब सौंपी
जिसके ऊपर न कोई।। २६।।

वह दीपशिखा सा तन ले
रोशनी दिया की दिखती।
आत्मा का दर्शन करके
सबको वह प्रेम से भर दी।।२७।।

पत्नी से ऊपर उठकर
वाणी का गुरुद्वारा ले।
वह राह दिखायी ईश्वर
जो बसा हुआ था उसमें।। २८।।

रत्ना ने दिया स्वप्रियतम
जिसमें दीपित युग का स्वर।
यह अमिट कहानी नूतन
मानस के कूल कगर पर।। २९।।

तुलसी का जीवन सौरभ
उस तट की महमह सीढ़ी
जो भी उसपर चढ़ जावे
तर जावे कुल की पीढ़ी।। ३०।।

रत्ना की व्यथा से तुलसी
मानस की कथा लिख डाला।
प्रतिवर्ण बनी युग वाणी
विश्वम्भर की ही लीला।। ३१।।

सांस्कृतिक चेतना भारत
यह रामचरित रस मानस।
रत्ना जिह्वा से निकला
जिसको तुलसी छक पीया।। ३२।।

तुलसी हरि पद में अर्पित
रत्ना तुलसी को समर्पित।
तन–मन का अर्पण तात्त्विक
जीवन पथ करता सात्त्विक।। ३३।।

चिर – विरह न थककर हारे।
शुभ मिलन द्वार रस घोले।
जन – गण – मन इसको पीते
तुलसी – रत्ना मिल गाते।। ३४।।

काया से काया मिलकर
जो कुछ न सृष्टि कर पाते।
आत्मा से आत्मा मिलकर
कुछ नयी सृष्टि कर देते।। ३५।।

रत्ना की अमिट कहानी
तुलसी की बनी निशानी।
सिय – राम कथा संपूरन
अमरत्त्व भरी यह कहानी।। ३६।।

रत्ना की चिट्ठी तुलसी का उत्तर

भेज दी प्रिय पति, रतन पर
वह विवश सी सोचती।
है कहाँ? किस घाट पर वह
याद कर वह सोचती।। १।।

राम चरणों हेतु भेजी
पर भरोसा हैं नहीं
बावला मेरा है तुलसी
मन मसोस कर कोसती।। २।।

एक दिन सखियाँ कहीं
एक चिट्ठी लिख रतना,
चिठ्ठी हो शब्दों से तीखी
जिससे उत्तर मिल सके।। ३।।

रतन शान्त समुद्र जैसी
बात पर कुछ भा गयी।
सखियाँ सिन्धु के लहर जैसी
कँहर बनकर ढा गयी।। ४।।

कोई कहती गया काशी
फँस गया वह मधुगली।
कितना भोला पति तूँ पायी
कहीं कोई मिली अली।। ५।।

कोई कहती नहीं रसिके!
सुना गया वह अवधपुरी।
तेरा वह उपदेश सुनके
बन गया शुचि संत ही।। ६।।

तीसरी कहती नहीं रे!
मर्द का विश्वास क्या?
लिख तूँ पाती रतन सखी हे!
कर परीक्षा प्रेम का।। ७।।

टालती रहती वह सबको
सजनी का विश्वास था।
न्याय पद से नहीं विचलित
सात - पद का साथ था।। ८।।

पर कठिन है मानवी - मन
उलझ जाता स्वतः ही।
यही बात घटी रतन पर
लेखनी कुछ यूँ लिखी।। ९।।

मायामय संसार यह
उलझना मत नाथ।
मैं सबके संग भी अलग
क्योंकि आप न साथ।। १०।।

प्राण तो रहता आप संग
दुनियाँ के हित नाथ।
तन तो अँखियन के न संग
जड़ता ही अब साथ।। ११।।

रत्ना द्वारा लिखा दोहा–

"कटि की खीनी कनक सी,
रहति सखिन संग सोइ।
मोहि फटै को डरु नहीं,
अनत कटै डर होइ।। ११।।"

लिख दी चिट्ठी अनुशासन की
अपने तन को भूल चुकी।
भय मिथ्या यह उहापोह की
अक्षर में लिख भेजी थी।। १२।।

चिट्ठी केवल चिट्ठी न थी
सरस सुगन्ध सत्त्व मन की।
अर्धांगिनी की दृढ़ शक्ति की
जिज्ञासामय श्वाँसें थी।। १३।।

चिठ्ठी पहुँची किसी तरह जब
तुलसी ने सोचा यह क्या।
मन – तरंग की जीवनचर्या
पुनः सामने आयी क्या।। १४।।

क्या लिख दूँ अब क्या जवाब दूँ?
ठगा रहा पत्र ले हाथ।
पुनः अतीत आया क्या वापस
सोच – सोचकर कम्पित हाथ।। १५।।

तत्त्व प्रेम सब सौंप चुका था
अपने 'राम' को अब तुलसी।
दुनियाबी रिश्ता भूला था
रामचन्द्र चकोर तुलसी।। १६।।

सबके भीतर राम देखता
एक भरोसा उसका ही।
यह विचार रख, चिट्ठी खोला
पढ़ स्थिर था सन्त तुलसी।। १७।।

गोस्वामी जी का उत्तर–

"दोहा–कटै एक रघुनाथ संग, बाँधि जटा सिर केस।
हम तो चाखा प्रेमरस, पत्नी के उपदेस।।"

द्वैत की अँखिया नहीं अब
भाव की ही भूमिका।
एक ही परब्रह्म ईश्वर
तोड़ता वह अहमिका।। १८।।

जगत है यह स्वप्न शाला
कोई न अपना पराया।
तुमने ही हमको दिखाया
खुला चेतन द्वार आला।। १९।।

गुरु बनी मेरी पूजनीया
दीक्षा आध्यात्मिक दिशा का।
इससे बढ़कर हो क्या सकता?
सत्य – पथ तूँ चेतना।। २०।।

त्याग की तूँ न्यायशाला
सोच अब मेरा न कर।
राम का शुभ नाम सच्चा
पकड़ायी मेरा यह कर।। २१।।

तूँ कभी न पृथक मुझसे,
मैं कभी भी न रहा।
आत्म ज्योति को जगाके
राम के संग रम रहा।। २२।।

पर तेरे उपदेश से अब
राम का मैं बन चुका हूँ।
चख लिया हूँ प्रेमरस अब
मन को खाली कर चुका हूँ।। २३।।

मेरे तन का चर्म रत्ना
तेरी जूती यदि बने।
राम नाम प्रकाश माला
रत्ना के मुख से सजे।। २४।।

कर्ज तेरा मेरे ऊपर
क्योंकि गुरु तूँ शिष्य मैं।
अमर है तेरा धरोहर
जोड़ने का काम मैं।। २५।।

राम के रंग की चदरिया
ओढ़ता संन्यासी मन।
भेजना मत पाती रत्ना,
जग का न व्यापार मन।। २६।।

अक्षरों का गन्ध प्रभुमय
प्रेम और विश्वास की।
हट न पीछे पथ दिखाकर
रिश्ता मेरा आत्म की।। २७।।

✪

रत्ना का साधना पथ

मणि प्रवाला शोभना वह,
रूप की सौदामिनी।
राम नाम की मुकुटमणि बन,
दीप्त करती दामिनी।। १।।

अवनि से अम्बर सजाकर,
गहन अन्ध - मिटा चुकी।
रूप का सौदा किए वह,
अमृत मंथन कर चुकी।। २।।

कलम के अक्षर की कायल,
सज चुकी मणि दीप बन।
भर रहीं सबमें उजाला,
प्रीति रस की पीर बन।। ३।।

अक्षरों की मणिप्रभा वह,
राधिका स्वर साधना।
रत्नमाला सम गुँथी वह,
भाव मार्मिक रंजना।। ४।।

तापसी व्यवहार उज्ज्वल,
चित्त की तप - साधना।
सांस्कृतिक श्वेताम्बरा वह,
पूज्य भाव सुदर्पणा।। ५।।

सभी बन्धन खुल चुके,
अब नहीं डर था उसे,
प्रीति को कर्तव्य पथ दे,
छिप चुकी अंधकार में।। ६।।

नाम की ख्वाइश न उसकी,
देश की चेतावनी।
हो चुकी गुमनाम जग में,
बऩ चुकी नहीं कामिनी।। ७।।

काव्य की कविता कलेवर,
वाङ्मयों की दीपमणि।
पति की प्रिय पहचान बनकर,
सलिल बही मंदाकिनी।। ८।।

दीप्ति की दीपित शिखावह,
अन्धकारा काटती।
भटकते राही को पथ दे,
श्वाँस अपना ले रही।। ९।।

कर्म की ले पाँच उँगली,
गाय कृष्णा दूहती।
सर्व को अपना समझती,
स्वयं बस दुख झेलती।। १०।।

अपनी पीड़ा लगती छोटी,
घाव सबका धो रही।
गिरके उठी, रोशनी बन,
व्यथा सबका पूछती।। ११।।

भाव - मंथन, प्रीति निश्छल,
देश की मणि देहरी।
काव्य में छायी सुमंगल,
मानस तट की हंसिनी।। १२।।

वर्ण की वह अर्थ व्याख्या,
नवरसों की सुन्दरी।
छन्द उज्ज्वल गीतमय पद,
मानसी शुभ अक्षरी।। १३।।

मर्त्य का कभी मोह था नहीं,
आगे की वह सोचती।
प्राण की बाजी लगाती,
दर्द दिल का बाँटती।। १४।।

राम सिय विश्वास को,
निज स्नेह रस से सींच दी।
दर्द का गारा खुद बनकर,
रामचरित की पद बनी।। १५।।

प्राणपति तुलसी के भीतर,
न्याय की बरसात की।
भींगकर जो भी नहाया,
उसमें रत्ना पीर थी।। १६।।

राम - रस की स्वयं रसिका,
भव में व्यवहारमय।
अक्षरों के कोरको की,
छबि रसीली मन्त्रमय।। १७।।

सामवेद तरंग तरलित,
बस रहा था कण्ठ से।
देश संस्कृति का गिरावट,
धँस चुका उर बीच में।। १८।।

ज्ञान प्रचंड उदय हुआ था,
साधना चुप, कर रही।
तुलसी की मंथन, कविता की
इसलिए बस कर रही।। १९।।

शान्ति के पूजा की थाली,
वह सरस रस चेतना।
भ्रान्ति की न पड़ाव थी वह,
बन चुकी थी वेदना।। २०।।

वेदना ही नृत्य करता,
धमनियों में उछलकर।
भाव उत्सल वेदना का,
व्याप्त नभ से अवनि तक।। २१।।

चुभ चुकी तुलसी के भीतर,
भ्रान्तियों को बेधकर।
लेखनी की अंगरक्षक,
रतन दर्द को सानकर।। २२।।

धर्म की वह साध्य - साधन,
साधना पथ प्रीति का।
प्रिय - प्रियतमा योगपद यह,
दिव्यता स्वीकार का।। २३।।

नाद का माधुर्य मधुमय,
क्वणित किंकिणी नूपुरा।
आद्य अक्षर पीठिका वह,
काव्य की संगीतिका।। २४।।

प्रीति की मंजिल बनी वह,
दे रही मुस्कान हमको।
दर्द को खुद दर्द देकर,
दे रही वरदान हमको।। २५।।

करुण प्रीति प्रवाह बनकर,
आजतक वह बह रही।
दुनियाँ की वह नब्ज बनकर,
सीता के संग घुल चुकी।। २६।।

करुण से आत्मीयता का,
व्याप्त परिचय संचरित।
प्रीति की शृंगार सज्जा,
दो हृदय से अवतरित।। २७।।

चूड़ियों का खनक त्यागी,
प्यार के अनुरक्ति से।
सिन्दूरी शुभ माँग भरती,
चिर प्रतीक्षा योग से।। २८।।

घोलता अद्वैत द्युतिमय,
दो हृदय का मेल सुखमय।
द्वैत से अद्वैत सरगम,
बज उठा रत्ना में दुखमय।। २९।।

ज्ञानयज्ञ की प्रथम आहुति,
दे चुकी रत्नावली।
प्रिय पति आहूत करके,
मानस की, की आरती।। ३०।।

देश हित को ध्यान में रख,
भक्ति-शक्ति तुला बनी।
धर्म की स्थापना कर,
देश का कल्याण की।। ३१।।

पुण्य का शुभ योग देकर,
पाप युग का, खुद पी ली।
जनाकांक्षा मान रखकर,
निज जीवन को अग्नि दी।। ३२।।

प्रेम करते है सभी,
पर जानते नहीं धर्म को।
पढ़ रतन तुलसी आभ्यांतर
खुद चुनी बलिदान को।। ३३।।

अन्तस से धुँआँ उठता था,
कभी - कभी लघु चिन्गारी।
ऐसी पीर मिली थी उसमें,
'शून्य' की होती भरपायी।। ३४।।

स्वयं मिली थी आग स्वयं से,
अग्नि न शीतल हो पायी।
ऐसी लगन लगी प्रिय - पद में,
कभी न रत्ना तज पायी।। ३५।।

शूल चूमती हृदय बेधकर,
अपनापन उसमें मिलता।
प्रिय की याद सताती जब-जब
'मानस' उसको प्रिय लगता।। ३६।।

कानाफूसी नोक झोंक की,
प्रीति पुरानी भाई थी।
बड़ी जिन्दगी लेकर रत्ना,
खुद करती भरपाई थी।। ३७।।

दर्द का झरना भीतर बहता,
पर सब काम किया करती।
ठाकुर पूजा करके रत्ना,
बस प्रसाद खाया करती।। ३८।।

पति परछाई बनकर चलती,
काम क्रोध की नहीं छाया।
अति मासूम शान्ति पथ देती,
युग की वह सुन्दर काया।। ३९।।

विश्वासों के स्वाँसोंमें ही,
उसको प्रिय पति मिल जाता।
भारत की आत्मा थी रत्ना,
छोड़ न तुलसी, जी सकता।। ४०।।

काँटों का इतिहास अनोखा
कसक चुभन और गड़न गुफन।
यह अनन्यता दोनों में थी
विश्वासों का श्वाँस गमन।। ४१।।

सब कुछ अन्तर में गुबार बन,
उठता, तरल तरंग समान।
चिन्तन से सान्निध्य सुहावन,
महकाया करता आनन।। ४२।।

विषय व्याल का ज़हर पीकर,
बन चुकी शुचि चाँदनी।
बोध को स्वीकार कर कर,
विरह मन की संगिनी।। ४३।।

कोई देता ताना पति को,
कोई कहता बाबा है।
कोई कहता भग्गू तुलसी
कोई कहता राम है।। ४४।।

सब कुछ अनसुनी करती,
जब कहे कोई 'राम' है।
मानिनी अभिमान करती,
तुलसी राम का दास है।। ४५।।

सुयश को वह सँभाल रखती,
रामचरितम् याद कर।
अब न पछताती सुस्वामिनी,
चौपायी पद याद कर।। ४६।।

काव्य की कविता स्वयं वह,
देह के उपदेश मिस।
तिलक माथे का लगाकर,
भेज दी पति देश मिस।। ४७।।

✪

मानस पर सामाजिक प्रहार

शिव ने रक्षा की मानस की
यद्यपि युग का तीव्र प्रहार।
दर्श-दिशी में चौपायी गूँजी
सत्य प्रेम का ज्योति अपार।। १।।

लोक - लोक में फैला मानस
फिर भी प्रश्न - चिह्न बौछार।
संस्कृत पण्डित कहते मिलकर
अवधी भाषा ठेठ व्यवहार।। २।।

परिवर्तन के भुजा पाश में
कवि का मन, फँस न सका।
उहापोह संशय गुबार में
वह निरुपाधि न भटक सका।। ३।।

हृदय - क्षेत्र वह उस ईश्वर का
धर्म हेतु अवतार लिया।
परित्राण करने सन्तों का
पृथ्वी को वह बचा लिया।। ४।।

नहीं तुड़वाया मंदिर मस्जिद
कर न सका द्वेष अभिमान।
रामचरित का शिला - लेख लिख
गाया तुलसी दास महान।। ५।।

सज्जन दुर्जन पैदा होते,
सज्जन से बसंता संसार।
ईश्वर और संत जब आते
होता पृथ्वी का उद्धार।। ६।।

तुलसी रत्ना जन्म का कारण
विजय पाप पर, पुण्य अपार।
रत्ना का साधक मन उज्ज्वल
चमका दिया पति मन द्वार।। ७।।

इसी प्रभा की अग्निशिखा से
फैला रामचरित आलोक।
अन्तर्मन के शिव प्रकाश से
जागा भारत का दिवलोक।। ८।।

तुलसी रत्ना दोनों का लय
रामचरित में गूँज रहा।
मणि - मुक्ता कवित्त छन्दमय
ग्रंथित राम - सिया का त्याग।। ९।।

जीवन का दुख - दर्द भूलकर
रामचरित रस करता पान।
सामाजिक संरचना खातिर
मुदिता मथता प्रेम निधान।। १०।।

गुरु का नहीं चाह उसे था
युग का सहता रहा प्रहार।
अक्षय - वट वह रामचरित का
काट सका न कोई हथियार।। ११।।

युग को जन का बोल न भाता
जन तक चरित पहुँचाना था।
इसीलिए अवधी भाषा का
शुचि संगम करवाना था।। १२।।

समय कभी भी सत्य न सहता
युग - युग की यह कहानी है।
भुक्त भोगी थे मानस वक्ता
परहित इसकी निशानी है।। १३।।

काशी में जनभाषा के प्रति
पण्डितों ने मिल विद्रोह किया।
नहीं सुने वाणी उन सब की
अवधी में ही ग्रंथ रचा।। १४।।

हाहाकार मचाए सब मिल
पर मौन थे मानसकार।
रिश्तों का यह कथा - सरोवर
जोड़ रहा भाई का प्यार।। १५।।

चुप्पी भी सह सके न पंडित
ज्ञान का उनको था अभिमान
एक दूसरे से बतियाकर
सभा बुलाए ज्ञान - निधान।। १६।।

राय विचार मशविरा कर सब
पुस्तक रखी अब शिव के पास।
उसके ऊपर वेद उपनिषद
रखा गया पुराण सद्ग्रन्थ।। १७।।

मंदिर का घण्टा टन - टन कर
बजता स्वयं बजता जाता
कालजयी मानस था ऊपर
शिव को रामचरित भाता।। १८।।

यह अचरज देखे पंडित सब
फिर भी अहंकार का बोध।
हस्ताक्षरित ग्रंथ शिव से यह
दे न सका उनको शुचि बोध।। १९।।

सत्यं शिवं सुन्दरम् प्रमाणित
दश – दिशि का लय – तान बना।
पंडित ज्ञानी हार थके सब
गहरी साजिश बंना बना।। २०।।

ऊँगली दबाए सब मिलकर तब
फिर भी नफरत बनी रही।
करवाए तब चोरी मानस
तुलसी को कुछ पता नहीं।। २१।।

स्वयं राम प्रहरी मानस के
तीर धनुष ले खड़े हुए।
भगे चोर प्रणिपात नंमन कर
वे सब तुलसी शरण गहे।। २२।।

पता नहीं था तुलसी को कुछ
चोरों ने सब बात कहा।
रोने लगे जानकर यह सब
चोरों को ही नमन किया।। २३।।

प्रभु का दर्शन मिला आपको
मिलकर मैं भी धन्य हुआ।
मैं अज्ञानी तुम पवित्रतम
तुम्हें राम का दरस हुआ।। २४।।

स्वयं राम पहरा देते हैं
जान आघात लगा तुलसी।
मालिक बना दास का प्रहरी
लज्जित हो रोए तुलसी।। २५।।

सब सामान कुटी से फेंके
फफक - फफक कर रुदन किए।
धरती रोई अम्बर रोए
भक्त संतगण मिल रोए।। २६।।

भेजे पोथी टोडरमल को
अब कैसे चोरी होती।
एक प्रति भेजा गत्ना को
पोथी लेकर ही सोती।। २७।।

देखा सुना पण्डितों ने पर
ज्ञान-नेत्र कभी नहीं खुला।
मधुसूदन शास्त्री विचारकर
एक टिप्पणी स्वयं लिखा।। २८।।

आनन्द कानन का तुलसी तरु
पौधा बनकर हरा - भरा।
काव्यमंजरी चखने जिसका
राम भ्रमर खुद मँडराता।। २९।।

सबकी बोली बन्द हुयी अब
चौपायी में राम छवी।
सीता माँ दोहा कवित्त्व बन
सबके मन में रची बसीं।। ३०।।

सुनकर रत्ना हुयी समर्पित
मानी पति का शान रखी
जीवन कर दीं प्रिय को अर्पित
सजल नयन बरसात बनी।। ३१।।

पुलकित हो सखियों से कहती
सब सखियाँ मिल भरे उमंग।
पति तेरा तो राम स्वयं ही
रत्ना मन में पीर तरंग।। ३२।।

अब न प्रतीक्षा करती रत्ना
नहीं पपीहा बोल सुनी।
रमी रामचरित में रत्ना
कवि काव्य की मुक्त मणी।। ३३।।

अक्षर अक्षर सत चित आनन्द
समरसता से गीत सरस।
तुलसी हुआ तुलसिका सम अब
पण्डित ज्ञानी सुन समरस।। ३४।।

मिल जुलकर रहते सब जनगण
ज्ञान - नयन यह रामचरित।
जागा तुलसी भाग्य जगाया
मंगलमय यह काव्य चरित।। ३५।।

✪

रत्ना का परलोक गमन

पत्थर पिघल चुका था अब तो
जल में मिलने का अवसर।
वायु गन्ध में प्राण समाता
शून्य नगर का प्रिय हलचल।। १।।

जीवन में तप चुकी बहुत वह
एकाकी तन का ले भार।
पति परायणा कर्मवान वह
राष्ट्र को दी चेतना उदार।। २।।

पति उसका लोक नायक था
जान चुकी थी अन्तर्मन।
शास्त्रार्थ में विजय प्राप्त था
अतः दिया चरित्र का धार।। ३।।

उसके पति ने जीवन जीया
जिसका मूल्य न हो सकता।
सबके भीतर राम बसाया
उसके भीतर समरसता।। ४।।

सब उद्देश्य पा गयी रतन अब
नहीं शेष कुछ भी बाकी।
भाग्यलिपि पढ़कर अपना अब
अन्त समय को भी टाँकी।। ५।।

भोग - योग के बीच कड़ी बन
यौवन का सुख त्याग किया।
वृद्धावस्था थका चुकी अब
श्वाँसों का हक पार किया।। ६।।

तज वेदना काट चुकी वह
आनन्द बोध भी प्राप्त हुआ।
प्राणपति को प्राण में रखकर
खुद ही नौका पार किया।।७।।

भिक्षा माँगी कभी न रत्ना
चाहे घर हो या संसार।
नहीं पलायन जगसे की वह
उसका उजड़ा था घर द्वार।।८।।

उसको लगा देह छोड़ूँ अब
गुमशुम शान्त बनी रहती।
तन मन को समाधि देती अब
आत्मा में ही लीन रहती।।९।।

कर में प्रिय का रामचरित था
कुश आसन पर शैय्या थी।
प्रियतम खातिर नयन खुला था
इन्तजार की घड़ी न थी।।१०।।

पावों में पायल पहने तब
खुद आयी माँ जनक लली।
थपकी दे बयार करती वह
रत्ना लगती खिली कली।।११।।

मुख पर तेज उभरकर आया
माँ - माँ कहती चली गयी।
माँ मैं तेरी ही हूँ छाया
छोड़ न अब, यह अन्ध गली।।१२।।

माँ कहते ही वाणी गायब
श्वाँस बन्द, सब कुछ छूटा।
पंचतत्त्व प्रबन्ध सब गायब
काया जग से रूठ गया।। १३।।

अमर हुयी वह अमर लेख लिख
काल - पट्टी पर अमर हुयी।
जीवन भर मानवी रही वह
करुणा में ही शहीद हुयी।। १४।।

मानस की वह पृष्ठ भूमि बन
जीवन दिशा को दिशा दे दी।
काया बीच माया को छोड़ वह
भारतीय संस्कृति बनी।। १५।।

अर्धांगिनी तुलसी की रत्ना
प्रेरक शक्ति वह मानस की।
सियाराम से जुड़कर रत्ना
पति के भीतर प्रीति भरी।। १६।।

मिट्टी की कृति छोड़ भूमिपर
जग-म्रर्यादा तान बनी।
तुलसी की मानस मणि बनकर
सीता माँ के गोद चली।। १७।।

पास - पड़ोस और घर के भातर
रोकर सिसकी मार रहे।
भाई भतीजे सीना तानकर
रत्ना का सम्मान किए।। १८।।

अगल-बगल के गाँव के सज्जन
उसे देखने घर आए।
औषधि देगा कौन रतन बिन
धाड़ मारकर सब रोए।। १९।।

कर्मयोग ही अमर कथा है
जो करता वह जीवित है।
परोपकार ही उपयोगी है
मानस - पथ से जीवित है।। २०।।

भाई पट्टीदार सभी प्रभावित
रतन की मिट्टी उठा लिए।
दर्पित जिसका तन मन जीवन
आज उसी को काँध लिए।। २१।।

राम नाम का सत्य बोलते
चिता भस्म को ढूढ़ रहे।
रत्ना बँधी न भ्रम के पाश में
अंगारों से पूछ रहे।। २२।।

भारत का इतिहास अनोखा
माटी में भी सत्य का श्वाँस।
इस दुनियाँ से उठ गयी रत्ना
लौट सकी न फिर वह श्वाँस।। २३।।

सत्य ही जीवन का यथार्थ सब
क्षार भस्म था अनुलेपन।
अपनी निजता मिटा मिटाकर
देश को दी दीपित दर्पन।। २४।।

रिश्तों का मूल्यांकन उसमें,
सब रिश्ते अनमोल यहाँ।
छूटा गेह - नेह स्वजनों के
परमानन्द का प्रेम वहाँ।। २५।।

भारतवासी मुड़कर देखो
रामचरित का लोक विधान।
खोजोगे तीनों लोकों में
पर न मिलेगा शुचि संविधान।। २६।।

यही समझ जय बोल रहे सब
रत्ना तुलसी का जयकार।
दुनियाँ से मिट जाएगा सब कुछ
मिटेगा नहीं पर मानसकार।। २७।।

रत्ना दर्द समेट ले गयी
तुलसी पीछे खड़ी रही।
एक साथ कुछ दिन ही रही थी
फिर भी मन से बनी रही।। २८।।

✪

रत्ना की वेदना से तुलसी का मधु चेतना

प्रेम का जब तपिश मिलता
तब उमड़ती चेतना।
बसुधा जब यह कुटुम्ब लगता,
तब खिली मधु चेतना।। १।।

तुलसी चांहत नहीं मणि मुक्ता
जिह्वा बोले जय श्रीराम।
नयनों से पद - कंज धो रहा
जीवन को बस प्रिय श्रीराम।। २।।

भूल चुका था मात - पिता दुख
पत्नी को भी भूल चुका।
धन-धाम का फिकर नहीं कुछ
सगुण बीच निर्गुण निकला।। ३।।

नियति कभी छोड़ी न किसी को
भाग्य-विधाता का निर्माण।
बाल्यावस्था से ही भोग को
मान लिया तुलसी वरदान।। ४।।

विनय पत्रिका लिखकर तुलसी
अपनी पाती प्रभु को दी।
रतन वेदना से सत्य खोजी
जीवन में आशा भर दी।। ५।।

अब तक जो दीवाल खड़ी थी
बह भी गिरकर आज ढही।
जाते - जाते ऊर्जा भर दी
तुलसी ताकत और बढ़ी।। ६।।

बाँचे प्रभु तुलसी की पाती
आँखों से धारा निकली।
अपने भक्त की थाती रखली
जिसके भीतर रतन खड़ी।। ७।।

निर्गुण सा रहता त्रिलोक में
सगुण सेव्य श्रीराम - सिया।
उसकी चाहत सेवा पद में
राम चरण रति प्रबल रहा।। ८।।

जग तूफान झकोर सह सहकर
पीड़ा में आनन्द भरा।
दुख-सुख के निज संधि पत्र पर
जीवन का उद्धार किया।। ९।।

स्वार्थ और परमार्थ बीच वह
काल चाल को परख रहा।
बड़ा भरोसा सिय रघुबर पर
धनुष पराक्रम देख रहा।। १०।।

सुना रतन की मृत्यु पति ने
शोक मिट गया भीतर का।
अब बस देश जाति का गौरव
भक्ति चरण रति सिय पिय का।। ११।।

संघर्षों के रगण - झगड़ से
जब भी निकलती चिन्गारी।
बिन पद सेवा प्रभु का करके
मिलती नहीं शान्ति प्यारी।। १२।।

कालजयी वह प्रभु को समर्पित
पर तुलसी दल बना रहा।
पृथ्वी सूरज सब परिवर्तित
काल भी उसको देख डरा।। १३।।

बनजारा सा जीवन जीकर
काल पट्ट पर अंकित वह।
मानस का वह राजहंस बन
इस पृथ्वी का शुचि सौरभ।। १४।।

दो आक्षेप लगा है अबतक
तुलसी के स्वर्णाक्षर पर।
नारी जाति की कर्कशता पर
ब्राह्मणवाद के लाने पर।। १५।।

दो आक्षेप राम पर भी है
सिया त्याग, बाली वध का।
भक्त और भगवान एक हैं
साक्ष्य सत्य जीवन पथ का।। १६।।

सदा राम संग जुड़कर तुलसी
चलता रहा प्रेम - पथ पर
पद धोता बस राम का तुलसी
प्रेम कभी न विस्मृत कर।। १७।।

बड़ी क्रांति देखी तुलसी ने
काम क्रोध, माया परिताप।
सती नारी को पति निकालते
व्याभिचारिणी को रखते साथ।। १८।।

दो पथ पर जो चलती नारी
कभी देश की हो न सकी।
सामाजिक परिवारिक नारी
मर्यादा नहीं तोड़ सकी।। १९।।

छोड़ डगर अपने माटी का
बुरे राह पर जो चलती।
नारी प्रकृति शक्ति की हत्या
स्वयं हाथ से वह करती।। २०।।

जो सबसे मिल जुलकर चलती
माँ पत्नी भगिनी, घर श्वाँस।
जो हठवश कुपँथ पर चलती
खो देती सबका विश्वास।। २१।।

यद्यपि कवि को मिल न सका कभीं,
नारी-जाति कोमल स्पर्श।
प्यारी रत्ना का उपदेश भी
लगता मातृ-चरण स्पर्श।। २२।।

ऐसी नारी को प्रणाम कर
उसके मन को मिलता मोद।
जनकसुता जगदम्बा को वह
करता बारम्बार प्रणाम।। २३।।

अनृत चपलता माया का वह
खुलकर करता रहा विरोध।
भय अविवेक अशौच क्रूरता,
को माना नारी का 'खोट।। २४।।

रामचरित के मानस द्वार पर
रत्ना भूषित खड़ी रही।
कवि पंक्तियाँ रतन जटित स्वर
पतिप्राणों में बसी रही।। २५।।

सीयराम वेदना एक थी
कोई किसी से कुछ न कहा।
मन की बात समझ के जानकी
वन का खुद प्रस्ताव रखा।। २६।।

त्याग कर रहा सूर्य दीप्ति का
चाँद अमृत को त्याग रहा।
धरती अम्बर खुद को देता
त्याग धर्म का सार रहा।। २७।।

तुलसी को पहचान था युग का
उत्तरकांड में सार लिखा।
भूखा मरा गृहस्थ यहाँ पर
संन्यासी को महल मिला।। २८।।

सीख चुका था इसी जगत से
जिस यथार्थ पर पलते सब।
जाग रहा तुलसी आदर्श में
जिससे भाग रहे अग - जग।। २९।।

ब्राह्मण धर्म का खुला निमंत्रण
तुलसी का शुभ रामचरित
जाति - पाति का भेद नहीं कुछ
कलि का बोध यह रामचरित।। ३०।।

इस ब्रह्मांड के बाहर भीतर
अव्यय एक ब्रह्म का केन्द्र।
ब्रह्म ज्ञान करता जो नियमन
ब्राह्मण साधक तपस्या केन्द्र।। ३१।।

किसी जाति का नहीं वह हिस्सा
शुद्ध आचरण ब्राह्मण सार।
अन्तर्बोध जगाता ब्राह्मण
हित करना उसका व्यापार।। ३२।।

सबके द्वार से दाना खाए
द्वार - द्वार जा माँगे भीख।
वर्ण - धर्म् का भेद नही कुछ
वाणी से वे देंते सीख।। ३३।।

अलख निरंजन राम नाम का
जपकर तन - मन जगा दिया।।
बाती बन दीप रत्ना का
उजियारा सब घर को दिया।। ३४।।

उत्तर से दक्षिण तक देखें
रामचरित स्वयं जीवित।
पूरब से पश्चिम तक फैला
सम्बन्धों का स्वस्थ चरित।। ३५।।

शबरी प्रीति पर मुग्ध छन्द लिख
राम को जग से जोड़ दिया।
केवल कोल भील मित्र सब
जाति - बन्ध को छोड़ दिया।। ३६।।

संत समाज धुरी दुनियाँ के
क्या जाने वो छूत - अछूत।
जंगम तुलसी सबके अपने
समरसता के सरस सपूत।। ३७।।

देश के खातिर रामचिरत लिख
आस्था प्रेम जगाया है।
मानवता का पूर्ण धरोहर
मानस खुशियाँ लाया है।। ३८।।

इसी देश में पैदा हम सब
राम विचार की धारा है।
संगम कर ले मानस तट पर
शुद्ध आचरण न्यारा है।। ३९।।

यही इशारा क़िया राम ने
यह बापू का जीवन - मंत्र
आने वाली पीढ़ी सीखे
त्याग से चलंता तन - मन तंत्र।। ४०।।

देश की धरती जीवन माता
ईमान से सजती है।
देश - शृंखला मन की एकता
मानवता से बँधती है।। ४१।।

१६८० सम्वत् में
तुलसी ने तन त्याग किया।
राम प्रकृति से अमर लोक में
देव बोलते जयकारा।। ४२।।

रतन–वेदना से तुलसी की
मधु चेतना जागी।
भूत भविष्य वर्तमानकी
सब सीमाए लाँघी।। ४३।।

अन्तर्भूत चरित्र पवित्रता
बन जाती है साक्षी।
सियाराम के मन की शुचिता
जगती सीमा लाँघी।। ४४।।

इसीलिए तुलसी शरणागत
वरद हस्त श्रीराम का पा।
रतन बनी शक्ति तत्त्वगत
प्रेम तत्त्व को छान पिया।। ४५।।

अनपढ़ हो या पढ़े लिखे हो
सभी गा रहे चौपायी।
राम सगुण हो या निर्गुण हो
धरा धारिता निभ पाई।। ४६।।

अनृत जगत का लाल यह तुलसी
राम – कथा में रस भर दी।
अमर हो चुका लाल यह हुलसी
रतन ब्रह्मपद को पाई।। ४७।।

✪

उपसंहार

रत्ना जगायी तुलसी
जा राम से मिला।
बेबस हो ढूढ़ती
तुलसी कहाँ गया?।। १।।

पी - पी के धुन में डूबी
मंजिल वह खोजती।
पी मिल सका न उसको
पी को ही ढूढ़ती।। २।।

कभी सो सकी न रत्ना
कोकिल की हूक बन
हर शाख पर वह अबतक
बैठी ही खोजती।। ३।।

तुलसी न मुड़कर देखा
वह प्यार बेबसी।
वह राम से ही मिलकर
गया राम की गली।। ४।।

खूशबू मिली थी जिससे
उसको वह पी गया।
रत्ना के प्यार से उसे
श्रीराम मिल गया।।५।।

अब था कुछ न बाकी
जिसे याद कर सके
पर रतन कैसे भूले?
मंजिल न मिल सके।।६।।

यह बात मेरे मन में
खटकती रही हरदम।
जिसने मिलाया राम से
किसी को न उसका गम।।७।।

उस गम में अपना गम
मैं धोल पी चुकी।
रत्ना के प्यार में,
मैं तुलसी तलाशती।।८।।

सभी गीत गाते तुलसी
और भूलते रतन।
कथा - वाचको की भूमिका
देती रही कफन।।९।।

अबतक के अधिक कविजन
तुलसी पर ही लिखे।
जो बोल थी समुन्दर
उसको न पी सके।। १०।।

यह खारे जल की गाथा
नमकीन बन गयी।
सिय - राम प्रेम पूरन
रत्ना ने जगह ली।। ११।।

इसलिए आज लेखनी
गमगीन हो गयी।
तुलसी की रतन के लिए
मेरी बोध बन गयी।। १२।।

इसमें न भाव भाषा
बस रतन इबादत
यह प्यार का गुलिश्ताँ
पर देश इबादत।। १३।।

सारे जहाँ से बढ़कर
यह देश प्रिय भारत।
दाम्पत्य प्रेम निर्मल
उजागर किया भारत।। १४।।

सिय राम चरन की जय
तुलसी - रतन की जय।
नारी पवित्रता जय
नर दृढ चरित्र की जय।। १५।।

✪

परिचय

नाम – शुभंवदा [illegible]

पिता – पं. अन[illegible] मिश्र

माता – पवित्रा [illegible]

जन्म – 08-09-19[illegible]

स्थान – चुनार

पति – स्व. श्री प्रेमशंकर पाण्डेय

शिक्षा – एम.ए., बी.एड.

व्यवसाय – शिक्षण कार्य (अवकाश प्राप्त)
सुधाकर महिला महाविद्यालय,
पाण्डेयपुर, खजुरी, वाराणसी-कैन्ट

रुचि – लेखन कार्य – गद्य, पद्य, कहानी,
निबन्ध, भोजपुरी गीत

मेरा परिवार –

पुत्र – श्री मनोज कुमार पाण्डेय

पुत्रवधू – श्रीमती आशा पाण्डेय

पुत्रियाँ – 1. श्रीमती भावना शुक्ला
2. श्रीमती अपर्णा पाण्डेय
3. श्रीमती मीरा पाण्डेय

मेरा पता – श्रीमती शुभंवदा पाण्डेय
ग्राम – आशापुर,
पोस्ट – सारनाथ,
जिला – वाराणसी

● मुद्रक : आनन्द कानन प्रेस, वाराणसी ● फोन : 2392337